चतुर्थ-संस्करण

जुलाई, सन् १९५३ ई०

मुद्रक:—
राजस्थान प्रिंटिंग वर्क्स,
जयपुर

वक्तव्य

ऐतिहासिक दृष्टि से राजस्थान का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। विशेषतया यवनों के शासन काल में तो यह कुरुक्षेत्र का मैदान बना हुआ था और हर समय इस पर आक्रमण होते ही रहते थे। राजस्थान के निवासी मुख्यतः राजपूत थे जो अत्यन्त वीर, युद्धप्रिय तथा स्वाभिमानी थे। इसी कारण यवन शासकों से उनकी नहीं बनती थी तथा हिन्दू जाति व धर्म की रक्षार्थ उन्हें समय-समय पर यवनों के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करने पड़ते थे। एक ओर यवन शासक नीतिकुशल तथा धूर्त थे किन्तु दूसरी ओर राजपूत नरेश वीर तथा सरल-हृदय थे। यवनों की कूटनीति ने राजपूतों की वीरता पर विजय प्राप्त की और लोगों की इस धारणा को कि राजपूत राजनीति में कुशल नहीं हैं सत्य कर दिखाया। कुछ राजपूत वीर अवश्य इस धारणा के लिये अपवाद-स्वरूप थे, यथा-महाराणा प्रताप, भीमसिंह, राजसिंह, दुर्गादास आदि।

यह धारणा सर्वथा उचित नहीं कि राजपूत नरेश राजनीति समझते ही न थे। वास्तविकता तो यह है कि वे लोग जानबूझ कर कूटनीति का आश्रय नहीं लेते थे तथा धार्मिक आदर्श व मर्यादा का विशेष ध्यान रखते थे। राजस्थान की मरुभूमि सदा से वीर प्रसवनी रही है और एक दो नहीं अगणित वीर वीरांगनाओं के आदर्श पुनीत चरित्र संसारवासियों के समक्ष उपस्थित किये हैं। भारतीय ही नहीं विदेशी इतिहासकारों के ग्रन्थ भी ऐसी ही गुण गौरवमय गाथाओं से भरे पड़े हैं।

ऐसी ही एक परम पुनीत गाथा को प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित किया गया है। गाथा का कथानक ऐतिहासिक है जिसके प्रधान पात्र वीरवर दुर्गादास हैं। उनका उज्ज्वल चरित्र श्लाघनीय ही नहीं अनुकरणीय भी

है। भारतवर्ष में ऐसे ही वीरों की आवश्यकता है। जिस देश में ऐसे महापुरुष हों वह कभी परतन्त्र तथा दुखी नहीं रह सकता। दुर्गादास महान वीर होते हुये भी साधु थे। उनका अनुपम त्याग, स्वार्थ रहित सेवाभाव, उज्ज्वल आदर्श व सदाचार भारत के इतिहास में कोहेनूर के समान देदीप्यमान है। उनके हृदय में अहंकार, हिंसा या द्वेष के भाव न थे और न उन्हें यश का मोह व धन ऐश्वर्य या राज्य का लोभ ही था। वह समस्त राजस्थान को स्वाधीन बनाकर राम-राज्य की स्थापना करने के लिये उत्सुक थे और राजपूत जाति को सुसंगठित करके सबको एकता के सूत्र में पिरो देना चाहते थे। राजनीति में पूर्ण कुशल होते हुये भी उन्होंने कभी कूट-नीति अथवा छल-छन्द का प्रयोग न किया। यही उनकी नीति की महान सफलता थी जिसने औरंगजेब जैसे कूट-नीतिज्ञ को भी नीचा दिखा दिया। जातिभक्त व धार्मिक होने पर भी वह विधार्थियों से कभी द्वेप न रखते थे। उन्होंने मुसलमानों की भी सहायता की और यहां तक कि अपने कट्टर शत्रु औरंगजेब के पुत्र की भी शरणागत के रूप में पूर्ण रक्षा की। यवनों की जैसी कट्टरता व पक्षपात पूर्ण नीति का आश्रय उन्होंने कभी न लिया। उन्होंने संसार को दिखा दिया कि मनुष्य का उज्ज्वल चरित्र सब प्रकार सामर्थ्यवान हो सकता है।

दुर्गादास के चरित्र के साथ ही अन्य व्यक्तियों के चरित्र भी जिनका चित्रण इस पुस्तक में किया है मनन करने योग्य हैं। विस्तारमय से यहां इस विषय में लिखना उचित नहीं है। पाठक स्वयम् ही पढकर अपनी उत्सुकता की बाढ़ को शान्त कर सकते हैं।

रोचकता लाने के लिये शैली में यत्र-तत्र परिवर्तन कर दिया गया है किन्तु इस बात का भी अवश्य ध्यान रक्खा गया है कि ऐतिहासिकता की हत्या न हो। मुगल कालीन कथानक होने के कारण उर्दू शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक ही है किन्तु फिर भी कम से कम प्रयोग करने की

यथासाध्य चेष्टा की गई है। पुस्तक की उपयोगिता व उपादेयता के विषय में मुझे कुछ कहने का अधिकार नहीं है, इसका निर्णय पाठक ही कर सकते हैं। विज्ञ पाठकों द्वारा यदि उपयोगी सुझाव उपस्थित किये गये तो अवश्य उनका स्वागत किया जायेगा।

—लेखिका

शैलकुमारी चतुर्वेदी

हिन्दी ऑनर्स, विशारद।

अनुक्रमणिका

पहला परिच्छेद

"लालवा संकट में"

निशानाथ को बादलों से आँख मिचौनी खेलते देख कर बालिका का मन मयूर नाच उठा। वह मुग्ध होकर अपलक दृष्टि से आकाश की ओर निहारने लगी। निर्मल नील गगन न जाने किस खुशी में दीपावली मना रहा था। चन्द्र ज्योत्स्ना पृथ्वी पर थिरक रही थी। राकेश की शीतल स्वच्छ चंचल रश्मियाँ वसुन्धरा पर अपना उल्लासमय नृत्य प्रदर्शन कर रही थी। बालिका पुलक उठी। वह प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन करने में ऐसी निमग्न हो रही थी कि उसे यह भी ध्यान न रहा कि उसके सिर का वस्त्र कब हट गया और शीतल पवन ने कब उसकी केशावली को अस्त व्यस्त करके लहरा दिया। अकस्मात् किसी आहट से वह चौंक पड़ी। वह घबड़ाकर उठी और उसने अपने वस्त्रों को सम्हाला। उसी क्षण उसने देखा कि एक युवक उसके सामने खड़ा मुस्करा रहा है। वह आश्चर्य से बोल उठी—तुम? तुम? यहाँ?···

"तुम्हें इतना आश्चर्य क्यों हो रहा है?" युवक ने कुछ आगे बढ़ते हुये कहा।

"क्या तुम मुझसे कुछ कहने आये हो? क्या यहां आने से तुम्हें किसी ने नहीं रोका?"

"मुझे कोई नहीं रोक सकता लालवा! क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि मैं तुम्हारा भावी पति हूँ?"

"मुझ से इस प्रकार की बातें करना तुम्हें शोभा नहीं देता। इस सम्बन्ध में तुम पिताजी व माताजी से ही बात कर लो। मैं

इस विषय में स्वतन्त्र नहीं हूँ। कदाचित तुम्हें यह ध्यान नहीं रहा कि मैं भारतीय आदर्श में पली हुई कन्या हूँ।"

"यह मैं जानता हूँ किन्तु इस विषय में मैं केवल तुम्हारी निजी स्वीकृति लेने आया हूँ। यदि तुम्हें मालूम नहीं है तो मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ कि तुम्हारे पिता जी ने मेरा प्रस्ताव ठुकरा दिया है। परन्तु यदि तुम्हें मेरा प्रस्ताव स्वीकार हो तो मैं प्राणों की बाजी लगाकर भी तुम्हें प्राप्त करने की चेष्टा करूँगा। लालबा ! बोलो तुम्हारी क्या इच्छा है?" युवक ने गम्भीर होकर कहा।

"मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि इस विषय में मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ और अब भी कहती हूँ कि पिताजी की इच्छा के विरुद्ध मैं कोई कार्य करना नहीं चाहती।" लालबा ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

"तो क्या मैं यह समझ लूँ कि तुम्हें भी मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं है?"

"कुछ भी समझो। मैं निश्चित उत्तर नहीं दे सकती।"

'खूब सोच लो और समझ लो इसका परिणाम भयंकर होगा और इतना भयंकर कि जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं।"

"तलवारों की झनझनाहट के बीच रहने वाली राजपूत बालिकायें जीवन भर कांटों के पथ पर चलकर भयंकर से भयंकर परिणाम की भी आशंका नहीं करतीं। उनका जन्म ही भयंकर कल्पनाओं के वातावरण में होता है। नवयुवक ! तुम भूल कर रहे हो अपनी शक्ति का अपव्यय इस प्रकार करके देश व समाज को रसातल में पहुँचाने की चेष्टा न करो। अभी देश के

नवयुवकों को बहुत कुछ करना है। देश पर संकटों की घनघोर घटायें छाई हुई हैं और तुम्हे ऐसी बातें सूझ रही हैं। क्या यह लज्जा का विषय नहीं है ?" लालवा के मुख पर एक अपूर्व तेज था।

"मैं यह उपदेश सुनने नहीं आया हूँ, लालवा ! मैं अपना कर्त्तव्य तुमसे अधिक समझता हूँ और तुम्हें यह भी बता देना चाहता हूँ कि तुम्हारी अस्वीकृति का उत्तर पाने पर मैं इसी समय तुम्हें यहां से बलपूर्वक ले जाने के लिये आया हूँ।"

"ओह ! यहाँ तक ? लालवा यह सुनकर किंचित चौंकी।

"क्या सोच रही हो लालवा ? मेरे साथ चलने के लिये तैयार हो जाओ, तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। मैंने सब प्रबन्ध कर लिया है।" युवक धृष्टता से हँसकर बोला।

लालवा अवश्य ही कुछ सोच में पड़ गई। युवक ने क्या प्रबन्ध किया है, यह जानने की उत्सुकता होने लगी। उसे यह मालूम था कि इस समय उसके पिताजी यहाँ नहीं हैं किन्तु अन्य लोग तो हैं, उन्हें क्या हुआ ? वह राजपूत बाला थी किन्तु फिर भी नारी हृदय ही तो था। उसके मुख के भाव धूर्त्त युवक फौरन ताड़ गया। समस्त साहस बटोर कर वह आगे बढ़ा और चाहता था कि लालवा का हाथ पकड़ ले किन्तु उसी समय लालवा उछल कर दूर जा खड़ी हुई और क्रुद्ध शेरनी की भाँति गरज कर बोली—"खबरदार ! मेरे शरीर में हाथ न लगाना।" लालवा उस समय अकेली थी और कोई शस्त्र भी उसके पास न था क्योंकि वह तो अपने बाग में कुछ क्षण अपना दिल बहलाने के लिये आई थी। उसे क्या पता था कि अचानक ही ऐसी घटना हो जावेगी। उसने सहायता के लिये चिल्लाने की कोशिश की किन्तु उसी समय उसने देखा कि कई शस्त्रधारी

सैनिक उसे घेरे हुये खड़े हैं। वह आश्चर्य चकित होकर चारों ओर देखने लगी। युवक इस समय भी उसकी ओर देखकर धूर्तता की हँसी हँस रहा था। एक निश्शस्त्र अवला के चारों ओर तलवारें चमक रही थीं और वह वीच में वलिदान के वकरे की भाँति खड़ी हुई थी। उसकी समझ में न आ सका कि क्या करे और क्या न करे।

"लालवा! वोलो क्या चाहती हो? सम्मान पूर्वक चलोगी या अपमान पूर्वक?" युवक ने तलवार चमकाते हुए कहा।

"एक निहत्थी अकेली वालिका पर तलवारें चमकाते तुम्हें लज्जा नहीं आती? इस प्रकार कपट का नाटक रचकर ही क्या तुम मुझसे विवाह का प्रस्ताव स्वीकार कराने आये थे। तुम्हारी नीच प्रवृत्तियों ने ही पिताजी का मन तुम्हारी ओर से फेर दिया है। अन्यथा संभव था कि तुम उनके स्नेह के अधिकारी हो जाते। याद रखो! तुम किसी का हृदय वलपूर्वक नहीं जीत सकते। क्या तुम समझते हो कि इस प्रकार की चेष्टाओं से तुम सफल हो सकोगे?' लालवा ने घृणा का भाव दिखाते हुये कहा।

युवक पर इन वातों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। ऐसा अवसर पाकर वह अत्यन्त खुश था क्योंकि वह जानता था कि इस समय वह अवश्य अपने प्रयास में सफल होगा। उसने लव यह देखा कि लालवा राजी से मानने वाली वालिका नहीं है तो उसने वलपूर्वक उसे वहाँ से लेजाने का विचार कर लिया। उसे यह भी भय था कि अधिक समय वहाँ ठहरने से सम्भव है कोई विघ्न वाधा उपस्थित हो जावे और उसकी सारी कोशिशों पर पानी फिर जाये इसलिये समय नष्ट करना उचित न समझ कर उसने लालवा को वलपूर्वक लेजाने का प्रयत्न किया। अकेली वालिका इतने शस्त्रधारियों के वीच में कर भी क्या सकती थी।

वह वहां से चलने के लिये विवश हो गई। बाग के बाहर ही डोली तैयार थी। लालवा उसमें बिठादी गई और शस्त्रधारियों के घेरे में वह डोली तेजी से एक ओर जाने लगी।

लालवा अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहा रही थी। वह सोचने लगी कि पिताजी को जब यह मालूम होगा कि उनकी इकलौती दुलारी बेटी राजभवन से गायब हो गई है तो उनकी क्या दशा होगी? माता उसके वियोग में रोते रोते अपने प्राण गंवा देगी। इस धूर्त्त युवक ने यह कैसा चक्र चलाया कि वह सबकी आंखों में धूल झोंककर इतने शस्त्रधारियों के साथ जनाने बाग में घुस आया और उसे किसी ने न रोका। क्या कोई भेदिया इससे मिला हुआ है? क्या किसी ने उसकी सहायता की है? कुछ समझ में नहीं आता इसमें क्या भेद है? उसके हृदय में नाना प्रकार के भाव उठने लगे। बेचैनी बढ़ने लगी और सिर चकराने लगा। उसने भी प्रण कर लिया कि चाहे प्राण ही क्यों न चले जायें वह कदापि इस दुष्ट युवक से विवाह न करेगी।

थोड़ी दूर आगे पहुँचने पर अकस्मात् कुछ शोर गुल सुनाई दिया। ध्यान से सुनने पर मालूम हुआ कि कुछ अश्वारोही तेजी से आगे चले आ रहे हैं। निकट आने पर एक अश्वारोही ने आगे बढ़कर पूछा 'इस डोली में कौन है?"

"तुम्हें इससे क्या मतलब? ऐसा प्रश्न करने वाले तुम कौन हो?" डोली के साथ चलते हुये लालवा को लाने वाले युवक ने निर्भीकता से कहा।

अश्वारोही ऐसा उत्तर सुनने के लिये तैयार नहीं था। उसे ऐसा क्रोध आया कि उसने फौरन ही तलवार निकाल ली। वह कोई मुग़ल सरदार मालूम होता था और उसके साथ भी मुग़ल

सैनिक ही थे। वे सब उस राजपूत दल पर टूट पड़े। राजपूतों की संख्या अपने विपक्षी दल की संख्या से बहुत कम थी किन्तु फिर भी वे लोग प्राणों की बाज़ी लगाकर लड़ रहे थे। लड़ते लड़ते सैनिकों का उत्साह बढ़ता जाता था और उनकी संख्या भी कम होती जा रही थी। लालबा डोली में से झांककर यह सब हाल देखरही थी। उसे अपने भाग्य पर रोना आता था। वह तो समझी थी कि शायद कोई दल उसकी रक्षा करने के लिये आया होगा किन्तु यह तो रहस्य ही कुछ और निकला। किसी भी दल के जीतने में उसका लाभ न था। यदि मुग़ल जीत गये तो उसकी दशा अधिक शोचनीय हो जायेगी और उसके कुल में कलंक लग-जावेगा। वह जीते जी अपने कुल में धब्बा लगाने को कभी तैयार न थी किन्तु समय व परिस्थिति के आगे उसका भी क्या वश है?

अकस्मात् उसके मन में एक विचार उठा। सब लोगों को लड़ाई मे व्यस्त देखकर उसने भागने का इरादा किया। उसने ध्यान से देखा कि उसकी डोली के पास कोई नहीं है क्योकि डोली उठाकर ले चलने वाले भी लड़ाई में लगे हुये थे। रात का समय था, जंगल था ही, ऐसा सुअवसर चूकना बुद्धिमानी नहीं है। यह सोचकर वह चुपचाप डोली में से बाहर निकली। परमात्मा ने भी उसकी सहायता की। किसी ने उस ओर नज़र न फेरी और वह चुपचाप खिसक कर एक वृक्ष की आड़ मे हो गई। वहां इस प्रकार ठहरना भी निरापद न था अतः वह छुपती हुई खिसकते खिसकते कुछ दूर एक वृक्ष के पास जा पहुँची जो काफी घना था। कुछ सोचकर वह उस वृक्ष पर जा चढ़ी और घनी पत्तियो में जा छुपी। वहां से वह लड़ाई खूब अच्छी तरह देख सकती थी इसलिये उसकी दृष्टि उधर ही थी क्योंकि उसे यह भय था कि जो जीतेगा वही डोली को खाली देख अवश्य इस वन में उसकी

छान वीन करेगा और तब बचना कठिन ही नहीं असंभव हो जावेगा।

कुछ क्षण पश्चात् ही उसने देखा कि, वह युवक जो उसे लाया था लड़ते लड़ते घायल होकर गिर पड़ा है और मूर्छित हो गया है। जो बच गये हैं वह इधर उधर जान बचाकर भाग गये हैं। जयश्री मुग़ल सरदार के ही हाथ लगी। युवक को मरा हुआ जान कर मुग़ल सरदार ने छोड़ दिया और वह डोली की ओर बढ़ा। लालवा भविष्य की कल्पना करके कांप उठी। वह यही सोच रही थी—"अब क्या होगा?"

———०———

दूसरा परिच्छेद

"चन्द्रसिंह"

जिस धूर्त्त युवक का हमने पिछले अध्याय में वर्णन किया है उसका नाम जानने के लिये पाठक अवश्य उत्सुक होंगे। वह युवक "चन्द्रसिंह" था जो एक वीर राजपूत सरदार था। वह माड़ो के राजा महासिंह की एकमात्र सुन्दरी कन्या 'लालवा' पर मोहित था और उससे विवाह करना चाहता था। महाराज महासिंह उसको नहीं चाहते थे। उसकी दुष्टता और उसके अवगुण देखकर उन्हें इस नवयुवक से घृणा होगई थी। यही हाल लालबा का भी था। हां लालवा की माता तेजबा के विचार स्थिर न थे। कभी तो वह अपनी स्वीकृति दे देती थी और कभी सब का रुख देखकर अस्वीकार कर देती थी। तेजबा उन महिलाओं में से थीं जो संघर्ष से घबड़ाती हैं और सुख से जीवन व्यतीत करना अधिक पसन्द करती हैं। उनकी बला से कुछ भी हो किन्तु राजसुख उपभोग मे किसी प्रकार की बाधा नहीं आनी चाहिये। स्वयम् महासिंह अपनी पत्नी के इस स्वभाव से परेशान थे।

हां तो चन्द्रसिंह ने महाराज महासिंह के सामने लालबा के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव रखा किन्तु महाराज ने टाल दिया। चन्द्रसिंह शान्त रहने वाला व्यक्ति तो था नहीं। वह बराबर अनुरोध करता ही रहा और अन्त में महाराजा महासिंह को स्पष्ट ही अस्वीकृति का उत्तर देना पड़ा। चन्द्रसिंह को यह आशा कभी न थी। उसे बहुत बुरा लगा और वह समय की

ताक में रहने लगा। वह महाराज महासिंह को किसी भी प्रकार नीचा दिखाना चाहता था। उसने मन में पक्का विचार कर लिया कि छल से बल से कैसे भी हो लालवा से विवाह अवश्य किया जाये और महाराज महासिंह को बुरी तरह अपमानित किया जाये। वह उनके मार्ग में कांटे बोने लगा।

महाराज महासिंह की अनुपस्थिति में वह किस प्रकार लालवा को चोरी से ले गया इसका हाल गत अध्याय में पाठक पढ़ चुके हैं। उसके लिये महाराज महासिंह के राजभवन में प्रवेश करना कठिन बात नही थी क्योंकि वह वहां पहले से ही आता जाता था और प्रायः लालवा की माता तेजवा से चापलूसी की बातें बनाया करता था। महाराज महासिंह के सावधान कर देने पर भी तेजवा चन्द्रसिंह की चिकनी चुपड़ी बातों पर विश्वास कर बैठी चाहे फिर उन्हें पछताना ही पड़ा। उन्हीं की अदूरदर्शिता के कारण चन्द्रसिंह लालवा को लेजाने में सफल हो सका अन्यथा राजभवन से एक राजकुमारी का इस प्रकार चले जाना हंसी खेल नहीं है और वह भी उस जमाने में जब कि राजा लोग सतर्क रह कर पूर्ण सुरत्ता का प्रबन्ध रखते थे। चन्द्रसिंह ने वहां ऐसा जाल फैलाया कि सब को मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधा कर लिया।

यदि महाराज महासिंह होते तो शायद चन्द्रसिंह की दाल कभी न गलती क्योंकि वे उसके हथकंडों को खूब समझते थे! उनकी उपस्थिति में वह तेजवा से कभी अकेले में बात नहीं कर सकता था और न वह लालवा से ही बोलने का साहस कर पाता था। महाराज महासिंह लालवा को प्राणों से भी अधिक चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि उसका विवाह किसी ऐसे योग्य राजपुत्र से करें जो वीर, धीर, रूपवान, गुणवान होने के अतिरिक्त स्वदेश प्रेमी हो और स्वाधीनता के लिये अपने प्राणों को

तृणवत समझता हो। चन्द्रसिंह में यह गुण नहीं थे। वह वीर था और रूपवान भी किन्तु गुणों का उसमे भारी अभाव था। वह उन व्यक्तियों मे से था जो स्वतन्त्रता के लिये दुख उठाने की अपेक्षा परतंत्र रहकर सुख भोग करते रहना अधिक उत्तम समझते हैं।

चन्द्रसिंह ने जब यह देखा कि महाराज महासिंह उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं करते और उनके रहते उसको अपने उद्देश्य में सफलता भी प्राप्त नहीं हो सकती तो वह अधिक दुष्टता पर उतर आया और उसने मुगलों से अपना सम्पर्क बढ़ाना शुरू कर दिया। समीपवर्ती कुछ मुगल सरदारों से उसने मित्रता का संबंध स्थापित कर लिया और उन्हें यह विश्वास दिला दिया कि वह उन्हें राजपूतों की गुप्त बातों व उनके षड़यंत्रों का हाल बताता रहेगा। मुगलों को चाहिये भी क्या था। वे तो ऐसे अवसर की ताक में रहते ही थे उन्होंने भी चन्द्रसिंह को सहायता करने का पूर्ण वचन दे दिया।

जिस समय चन्द्रसिंह लालवा को डोले में लिये जा रहा था उस समय उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि इस प्रकार विघ्न उपस्थित हो जायगा और जिन मुगलों को उसने मित्र बनाया है वही उसकी राह में बाधक हो जायेंगे। युद्ध करते समय वह यह बात अवश्य जान गया कि यह लोग समीपवर्ती मुगल सरदारों में से नहीं हैं वरना इस प्रकार अचानक आक्रमण न करते। सम्भव है वे लोग किसी अन्य स्थान से आये हो और डोली देखकर उन्हें किसी प्रकार का सन्देह हो गया हो। उस काल में मुगलों का प्रभुत्व था इसीलिये साधारण मुगल सैनिक को भी किसी बड़े से बड़े हिन्दू सरदार पर अपना रौब गांठते हुये संकोच न होता था। अकारण ही किसी से जूझ पड़ना उनके

लिये साधारण बात थी। डोली या पालकी देखकर तो उन लोगों का मन विचलित हो उठता था।

विजय प्राप्त करते ही मुगल सरदार ने घायल चन्द्रसिंह की ओर देखा। वह उस समय अर्द्धमूर्छित अवस्था में था। सरदार ने समझा वह मर गया है अतः उसकी ओर ध्यान न देकर वह डोली की ओर बढ़ा। किंचित मुसकराते हुये उसने डोली का परदा उठाया किन्तु उसे खाली देखकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही।

"खां साहब ! क्या बात है ?" उसके एक साथी ने कहा।

"बात क्या खाक है ? यहां तो मामला ही दूसरा है" झुंझलाते हुये सरदार ने डोली का परदा उठा दिया।

"यह तो धोखा ही हुआ। इतनी खून खराबी भी हुई और कुछ हाथ भी न आया।" दूसरे साथी ने कहा।

"कहीं ऐसा न हुआ हो कि मौका देखकर शिकार निकल गया हो।" एक बोला।

"हां हो सकता है कि..............."

"नहीं नहीं यह असंभव है। देखते नहीं कैसा बियावान जंगल है और रात का समय है। ऐसे अवसर पर खास कर जब कि हम लोग यहीं लड़ रहे हैं यह कैसे संभव हो सकता है कि कोई हमारी आंखों में धूल झोंक कर भाग जाये।" खां साहब ने कहा मानो यह स्वीकार करने में वह अपना अपमान समझते थे कि उनका शिकार उनके सामने ही गायब हो गया।

लोग तरह तरह के अनुमान लगाने लगे और अन्त में परिणाम यह निकाला गया कि यह डोली खाली ही थी और कदाचित किसी के लिये ले जाई जा रही थी। यही बात सबके

दिमाग़ में वैठ गई और कुछ क्षण वहां ठहर कर वे लोग डोली को वहीं छोड़कर अपने रास्ते चले गये।

लालवा वृक्ष पर वैठी हुई यह सब हाल देख रही थी जब तक मुगल वहां रहे उसका हृदय धड़कता ही रहा किन्तु उनके जाने के बाद उसने सन्तोष की सांस ली और अपने भविष्य के कार्यक्रम पर विचार करना शुरू किया। वह वृक्ष से नीचे उतर आई और उस स्थान पर पहुँची जहां युद्ध हुआ था। एक घायल मृतप्राय राजपूत के वस्त्र उतार कर उसने स्वयम् पहिन लिये और वह एक राजपूत सैनिक के वेष में हो गई। अब उसे पहचानना आसान न था। अपनी रक्षा के लिये उसे यही वेष धारण करना उचित जान पड़ा। उसे एक घोड़ा भी मिल गया और शस्त्र भी, हाथ में तलवार लेकर वह घोड़े पर सवार हो गई। जिस समय वह घोड़े पर सवार हो रही थी उसी क्षण उसके कानों में आवाज पड़ी—"ठहरो !" उसने पीछे मुड़कर देखा तो घायल चन्द्रसिंह उठकर खड़ा हो गया था। जिस बात की लालवा को आशा न थी वही हो गई। कदाचित दुर्भाग्य ने अभी उसका साथ नहीं छोड़ा था। परन्तु अब इस समय वह चन्द्रसिंह से विशेष भयभीत न हुई क्योंकि प्रथम तो चन्द्रसिंह घायल था और इसके अतिरिक्त वह स्वयम् भी शस्त्र रहित नहीं थी। चन्द्रसिंह के साथी सब मूर्छित पड़े हुये थे और उनके चेतन होने की आशा भी नहीं थी। लालवा ने तिरस्कार की दृष्टि से चन्द्रसिंह की ओर देखा और मुँह फेर लिया।

यह देखकर चन्द्रसिंह ने कहा—"लालवा ! यह न समझना कि मैं घायल होकर सर्वथा शक्तिहीन हो गया हूँ। तुम भागने का विचार छोड़ दो। स्मरण रक्खो कि तुम किसी भी प्रकार मुझे छोड़ कर नहीं जा सकती।"

"तुम तो अपनी शक्ति के भरोसे मुझे मुगल सैनिकों के अनुग्रह पर छोड़ चुके थे। यह बात दूसरी है कि मैं चालाकी से उनके चंगुल से निकल गई। यदि मैं डोली में से न निकल गई होती तो तुम मुझे यहाँ खड़ी हुई न पा सकते थे। क्या इस वीरता के बल पर मुझे यहाँ छलबल से डोली में बिठाकर लाये थे ?" लालवा ने व्यङ्ग बाण छोड़ते हुए कहा।

जो कुछ हो गया सो होगया। युद्ध में हारजीत तो होती ही रहती है। वीर लोग ऐसी बातों की चिन्ता भी नहीं करते। मैं जानता हूँ कि तुम व्यंग कर रही हो किन्तु मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। यह अच्छा ही हुआ कि तुमने मरदाना वेष धारण कर लिया। मुझे भी तुम्हें साथ ले जाने में आसानी रहेगी। चलो! लालवा मेरे साथ चलो। घोड़े का मुँह इस तरफ फेर लो। यह कह कर चन्द्रसिंह अपने घोड़े पर सवार हो गया और घोड़ा बढ़ाकर लालवा के सामने ले आया।

लालवा भी उस समय तक घोड़े पर सवार हो चुकी थी। और उसके एक हाथ में नङ्गी तलवार नाच रही थी। उसने चन्द्रसिंह से कहा—देखो चन्द्रसिंह ! मैं इस समय मार्ग में आये हुए कांटों को हटाने की सामर्थ्य भी रखती हूँ। तुम इस समय घायल अवस्था में हो इसलिये मुझे तुम्हारे प्रति सहानुभूति है। जाओ अपने घर जाकर मरहम पट्टी की व्यवस्था करो और यहाँ व्यर्थ ही अपने शरीर को कष्ट न दो। मैं तुम्हारे साहस की अवश्य प्रशंसा करती हूँ कि इस दशा में भी तुम घोड़े पर सवार होकर एक कन्या का सामना करने के लिये तैयार खड़े हो। मुझे भय है कि इस समय युद्ध करना तुम्हारे लिये हितकर सिद्ध न होगा और तुम अपने शरीर को नष्ट कर बैठोगे। देखो, देखो तुम्हारे कन्धों से अब तक रुधिर टपक रहा है, तुम्हारी आकृति

बिगड़ी हुई दशा में है, तुम बहुत थके हुये हो, जाओ, चन्द्रसिंह जाओ, अभी विश्राम करो। स्वस्थ होने पर युद्ध करने के लिये तैयार होकर आना और यदि तुम एक कन्या को युद्ध का निमन्त्रण देना पसन्द करोगे तो मैं अवश्य तुम्हारे सम्मुख आने की चेष्टा करूँगी। यह कहते कहते तलवार को हवा में चमकाते हुये लालबा ने घोड़े के एड़ लगाई। घोड़ा हवा हो गया और चन्द्रसिंह मुँह देखता ही रह गया।

लालबा की बातें सुन कर चन्द्रसिंह मन ही मन खीझ रहा था और दांतों को पीस कर अपना क्रोध प्रकट कर रहा था किन्तु इस समय उसके शरीर में इतने घाव लगे हुये थे कि तलवार चलाना और लड़ना उसे अत्यन्त कठिन प्रतीत हो रहा था। उसने सोचा कि लालबा से युद्ध करे और यह कोशिश भी की कि लालबा को रोक ले या उसका पीछा करके उसे पकड़ ले किन्तु आगे बढ़ते ही उसके साहस ने जबाब दे दिया। इच्छा होते हुये भी वह अपनी मनोकामना पूर्ण न कर सका और उसकी आँखो के सामने ही उसकी सारी चेष्टायें विफल हो गईं।

ठण्डी आह भरते हुये उसने अपने घर की ओर प्रस्थान किया और मरहम पट्टी की व्यवस्था की। उसके दिमाग में वही बातें चक्कर खा रही थीं और उसके सर से लालबा के प्रेम का भूत अभी नहीं उतरा था। अब उसका प्रेम केवल प्रेम ही न रह गया था प्रत्युत उसके साथ ही अपमान के प्रतिकार की ज्वाला भी उसे अधिक तीव्र रूप में प्रज्वलित करने में सहायक हो गई थी। महाराज महासिंह के समस्त परिवार का वह पक्का शत्रु बन बैठा।

तीसरा परिच्छेद

"मारवाड़ के दुर्दिन"

सम्राट बनने के समय से ही औरंगजेब की गिद्ध दृष्टि मारवाड़ पर लगी हुई थी। वह मारवाड़ के राज्य परिवार का अन्त करके उस पर अपना अधिकार करना चाहता था। प्रकट रूप में ऐसा करना समस्त राजपूतों मे विद्रोह की आग भड़का देना था इसलिये वह कूटनीति द्वारा इस कार्य को पूर्ण करना चाहता था। महाराज जसवन्तसिंहजी राठौर उन दिनों मारवाड़ के शासक थे और अपनी वीरता के लिये सारे देश में विख्यात थे। उनके समान ही उनकी महारानी भी वीर थीं और उनकी वीरता का प्रभाव उनके पुत्रों पर भी समान रूप से पड़ा था। दिल्लीश्वर से महाराज ने सन्धि कर ली और उसके अनुसार वह उसके मित्र बन गये और यही कारण था कि अधिकांश लड़ाइयों में महाराज को सम्राट के पक्ष में जाना पड़ा। उन्होंने कई युद्ध जीते और सम्राट की धाक सारे देश मे जमाने की चेष्टा की। सम्राट उन्हें बराबर युद्ध में ही लगाये रखता था ताकि किसी प्रकार उनका अन्त हो जाये। विकट से विकट मोर्चे पर वह उन्हें भेजता था।

छत्रपति महाराजा शिवाजी के विरुद्ध भी दक्षिण में महाराज जसवन्तसिंह जी ही भेजे गये। उनके साथ सम्राट का एक पुत्र भी था किन्तु वहाँ शिवाजी और जसवन्तसिंहजी में मित्रता हो गई और युद्ध की गति शिथिल पड़ गई। यह बात सम्राट को सन्देहात्मक प्रतीत हुई और शिवाजी को पराजित करके कैद

करने की उसकी योजना सफल होती हुई दिखाई न दी। उसने महाराज जसवन्तसिंह को वापस बुला लिया और काबुल के विकट मोर्चों पर पठानों के विद्रोह को दबाने के लिये उन्हें भेज दिया। साथ ही अजमेर के विद्रोह को दबाने के लिये महाराज के पुत्र पृथ्वीसिंह को भेजा। काबुल में महाराज ने विजय पाई और अजमेर मे कुमार पृथ्वीसिंह भी सफल हो गये। सम्राट के इशारे से पारितोपिक स्वरूप पृथ्वीसिंह को विषैली पोशाक दी गई और उनका अन्त कर दिया गया। पृथ्वीसिंह के निधन समाचार से महाराज को बड़ा दुख हुआ। उन्हें भी सम्राट के गुप्त आदेश के अनुसार वहीं युद्धक्षेत्र मे प्रीतिभोज के अवसर पर धोखे से विप दे दिया गया और इस प्रकार उनका भी अन्त हो गया। उस समय महारानी गर्भवती थीं अतः उनकी रक्षा के बहाने सम्राट ने उन्हें दिल्ली वापस बुला लिया। रास्ते मे महारानी के पुत्र हुआ जिसका नाम अजीतसिंह रक्खा गया।

सम्राट की इस कपट नीति को वीर दुर्गादास ताड़ गये। दुर्गादास महाराज जसवंतसिंहजी के प्रधान सेनापति आशकरणजी राठौर के पुत्र थे। आशकरणजी उज्जैन की लड़ाई में धोखे से मारे गये थे। उस समय दुर्गादास की अवस्था केवल १५ वर्ष की थी। दुर्गादास का एक छोटा भाई भी था जिसका नाम जसकरण था। दुर्गादास राठौर अपने पिता के समान ही अत्यन्त वीर, धीर संयमी, परमार्थी और स्वामिभक्त थे। उनके गुणों पर रीझकर ही महाराज जसवन्तसिंहजी उन्हे अपने पुत्र के समान मानते थे और उन पर बहुत विश्वास करते थे। दुर्गादास ही मारवाड़ राज्य के प्रधान सेनापति थे।

दुर्गादास ने जब यह देखा कि सम्राट छलपूर्वक मारवाड़ के राज्य परिवार को नष्ट करके राज्य पर अपना अधिकार करना

चाहता है और उसके प्रलोभन में फंसकर ही स्वर्गीय महाराज के भाई इन्द्रसिंहजी भी उससे जाकर मिल गये हैं तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने मारवाड़ प्रदेश व राज्य परिवार की रक्षा का बीड़ा उठा लिया। वह साहसी और वीर तो थे ही साथ ही कुशल नीतिज्ञ भी थे उन्होंने दिल्ली से ही जहां एक भवन में महारानी नवजात राजकुमार सहित नजरवन्द थीं महारानी व कुमार को निकालने का विचार किया। अपने एक विश्वासी मुसलमान सेवक के हाथों चालाकी से राजकुमार को उस महल से बाहर निकाल दिया और उसे एक गुप्त स्थान में एक ब्राह्मण के घर भेज दिया जहां कुमार के होने का किसी को स्वप्न में भी विश्वास नहीं हो सकता था। उस मुसलमान सेवक ने जान पर खेलकर बड़ी बुद्धिमानी से कुमार की रक्षा की। औरंगजेब की कुटिल कठोर नीति से हिन्दू ही नहीं बल्कि बहुतेरे मुसलमान भी उसके विरुद्ध थे। यहां तक कि उसके दरबार में ही कई मुगल भी उसके विरोधी थे किन्तु भय के कारण प्रकट रूप से कुछ कर नहीं सकते थे। दुर्गादास ने मुगल सेना का सामना करके महारानी को भी महल से बाहर निकाल दिया और उन्हें भी स्वामी भक्त राजपूतों के साथ मारवाड़ के पहाड़ी स्थानों में भेज दिया। अब सम्राट वीर दुर्गादास का भी शत्रु बन बैठा किन्तु प्रकट में उसने कुछ न कहा। वह खुल्लमखुल्ला उस समय राजपूतों का विरोध करना न चाहता था।

जोधपुर में उस समय मुगल सूबेदार शासन कर रहा था और मारवाड़ में राजपूतों का कठोरतापूर्वक दमन किया जा रहा था। राजपूत लोग वीर दुर्गादास के नेतृत्व में अपना सगठन करने लगे और मारवाड़ को स्वतन्त्र करने के लिये व्यग्र हो उठे। वे लोग पहाड़ियों में कभी यहां कभी वहां और कभी कहां रहने लगे। एक स्थान पर स्थिर रूप से वह कहीं नहीं रहते थे। भील

लोग भी उनकी सहायता के लिये सदैव तैयार थे और युद्ध में उन्हें सहयोग देते थे। राजपूत लोग पहाड़ियों में रहकर ही युद्ध की तैयारी और संगठन कार्य करने लगे। अवसर मिलने पर वह मुगल सेना पर टूट पड़ते थे और रसद छीन लेते थे। मुगल लोग सर्वत्र बिखरे हुये थे किन्तु पहाड़ियों में लड़ने का अभ्यास न होने के कारण प्रायः राजपूतों से पराजित ही होते थे यद्यपि उनकी सख्या राजपूतों से कहीं अधिक होती थी। राजपूतों की संख्या तो बहुत ही कम थी इसलिये दुर्गादास ने उन्हें खुले मैदान में युद्ध न करने की राय दी। दुर्गादास युद्ध नीति में कितने कुशल थे यह मुगल लोग और स्वयम् सम्राट भी अच्छी तरह जानते थे और इसी वीर दुर्गादास की वीरता का आतंक उन पर ऐसा छाया हुआ था कि उनका नाम मात्र सुनकर ही शत्रुदल कांप उठता था। दुर्गादास आरम्भ से ही युद्ध प्रेमी थे और उन्होंने कभी पराजित होकर शत्रु को पीठ न दिखाई थी। वह सुख ऐश्वर्य व भोग विलास से कोसों दूर रहते थे। उन्हें कामिनी कंठ के कोकिल स्वरों की अपेक्षा रणभेरियों व शस्त्रों की झनकार अधिक मोहित कर सकती थी। शत्रु भी उनकी महानता की मुक्तकंठ से प्रशंसा किये बिना न रहते थे।

कुछ समय पश्चात् एक दिन—

वन की भयानकता उग्र रूप धारण किये हुये थी। घोर अंधकार का साम्राज्य स्थापित था। नीलाम्बर के सरस सुरम्य विस्तृत भव्य कानन में खिले हुये फूलों ने मानों अंगारों का रूप धारण कर लिया था। काली चादर ओढ़े हुये रजनी ने भी फुफकारते हुये काले नाग को छेड़कर उस सुनसान गहन वन की भयंकरता को बढ़ा दिया था। ऐसे भयानक अन्धकारमय वातावरण को चीरता हुआ एक वीर अश्वारोही तेजी से बढ़ा

जा रहा था। मार्ग में उसने किसी ओर ध्यान नहीं दिया यद्यपि उसका मस्तिष्क नाना प्रकार के विचारों का क्रीडा-स्थल बना हुआ था। चलते चलते तीन प्रहर रात बीत गई और अन्त में वह अपने घर जा पहुँचा। द्वार खटखटाते ही वृद्ध माता बाहर निकली और अश्वारोही को अन्दर ले गई। अश्वारोही को रक्तरंजित वेष में एक घायल व्यक्ति के सहित देखकर माता चौंक पड़ी और बोल उठी—"बेटा दुर्गादास! यह क्या मामला है?" दुर्गादास उस समय इतना थका हुआ था कि अधिक न बोल सका और वहीं भूमि पर लड़खड़ाता हुआ बैठ गया। माता ने उस समय अधिक बातचीत करना उचित न समझकर दोनों की मरहम पट्टी की और कुछ समय पश्चात् जब दोनों कुछ स्वस्थ हुये तो दुर्गादास ने अपना हाल बताना शुरू किया।

दुर्गादास ने कहा—"मां! तुम्हें मालूम ही है कि महाराज जसवन्तसिंह जी को छल पूर्वक मुगल बादशाह औरंगजेब ने काबुल की लड़ाई में भेजकर किस प्रकार मरवा डाला। उनके मरने के उपरान्त भी वह सन्तुष्ट नहीं है और राजकुमार अजीतसिंह को भी अपने पास रखकर समाप्त करना चाहता है। राजकुमार का प्रबन्ध हमने कर दिया है और उसे एक गुप्त स्थान में जयदेव ब्राह्मण के घर पहुँचा दिया है। मैं यही सब प्रबन्ध करके घर आरहा था। रास्ते में मैंने देखा कि महाराज महासिंह को मुगल सैनिकों ने घेर रक्खा है। मैं यह सहन न कर सका और मुगलों पर टूट पड़ा। मुगल सरदार जोरावरखां मेरे हाथ से मारा गया। उसके मरते ही मुगल सैनिक खून, खून चिल्लाते हुये भाग खड़े हुये। मैंने स्थिति पर विचार करते हुये वहां अधिक ठहरना उचित न समझा और महासिंह जी को लेकर मैं यहां आ पहुँचा। बस यही हमारी कहानी है।"

महासिंहजी भी अपने विषय में कुछ कहते किन्तु उसी समय दुर्गादास के विश्वासी नौकर नाथू ने आकर खबर दी कि मुगल सेना इधर ही आ रही है। यह सुनकर दुर्गादास फौरन तलवार लेकर खड़े हो गये। वृद्ध माता ने स्थिति देखते हुये दुर्गादास से कहा—'बेटा! बुद्धिमानी से काम लो। तुम अकेले मुगल सेना से किस प्रकार लड़ सकोगे। भलाई इसी में है कि तुम यहाँ से छुपकर निकल जाओ और मुझे यहां भगवान् के भरोसे छोड़ दो। मेरा क्या है मैं तो वृद्ध हूँ मेरे तो जीवन के दिन समाप्त होने आगये हैं मेरी चिन्ता न करो।' दुर्गादास अपनी माता को इस प्रकार अकेली छोड़ जाने को तैयार न था किन्तु माता ने उसे बहुत समझाया। अन्त में उसे माता की बात माननी ही पड़ी और वह महासिंह के साथ पिछले द्वार से निकल गया। माता के पास दुर्गादास का परम विश्वासी नौकर नाथूसिंह रहा।

दुर्गादास को गये कुछ ही क्षण व्यतीत हुये होंगे कि मुगल सैनिक द्वार पर आ पहुंचे। राज्यमद में मतवाले सैनिकों ने द्वार तोड़ दिया और लोग अन्दर घुस आये। यह देखकर नाथूसिंह आगे बढ़ा और उसने मुगल सरदार से पूछा—"कहिये! क्या बात है?"

"बात क्या है? हम दुर्गादास की खोज में आये हैं। बताओ वह कहाँ है?" सरदार ने कड़ककर कहा।

"ऐसी क्या बात है जो आप दुर्गादास की खोज कर रहे हैं?

"उसने खून किया है।"

"किसका?"

"जोरावर खां का। तुम कौन हो जो इतनी बातें बना रहे हो? जानते नहीं मैं कौन हूं? मैं कंटालिया का सरदार शमशेरखां

हूँ। मेरा बहुमूल्य समय नष्ट न करो और दुर्गादास को मेरे सामने उपस्थित करो। सरदार ने आज्ञा दी।

"दुर्गादास तो यहां नहीं है। वह तो कई दिन से यहां नहीं आये। हम भी उनकी प्रतीक्षा में घड़ियां गिन रहे हैं।" नाथूसिंह ने कहा।

"हूँ। सैनिको! मकान की तलाशी लो। वह यहीं छुपा होगा। सरदार की आज्ञा पाते ही सैनिको ने मकान की तलाशी लेना शुरू कर दी। घर का कोना कोना छान मारा किन्तु वृद्ध माता के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति का वहां चिन्ह भी न था। सैनिको ने वृद्धा को ही सरदार के सामने ला खड़ा किया। सर-दार ने उससे भी दुर्गादास के विषय में वैसे ही प्रश्न किये किन्तु, उसने भी अस्वीकृति सूचक उत्तर दिया। सरदार के बार बार पूछने पर और धमकियां दिखाने पर वृद्धा शान्त न रह सकी। वह वीर जननी थी, मुगल सरदार के अहंकारपूर्ण वाक्य वह सहन न कर सकी। वह बोल उठी—

"यह धमकियां तुम किसे दे रहे हो? क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हारे सामने वीरवर दुर्गादास की माता खड़ी है, जो वृद्धा होने पर भी क्षत्राणी है। क्या तुम किसी माता से यह आशा कर सकते हो कि वह अपने पुत्र का भेद उसके शत्रुओं को बता देगी?"

सरदार में इतनी ताब कहां जो यह शब्द सुन सके। उसने क्रुद्ध होकर अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि इस वृद्धा को वन्दी बना लिया जावे। ज्योंही सैनिक आगे बढ़े नाथूसिंह ने तलवार खींच ली और वह सामने आ गया। बस फिर क्या था। तल-वारें बजने लगीं। वृद्धा भी निशस्त्र न थी, उसने भी युद्ध में भाग लिया। वृद्धा स्त्री होने पर भी वह सैनिकों का वीरतापूर्वक

सामना करने लगी। सैनिकों को हटाती हुई वह सरदार के पास जा पहुँची और शेरनी की तरह उस पर टूट पड़ी। उसका रण-कौशल देखकर मुगल सैनिक भी चकित हो रहे थे। जो स्त्री इतनी वृद्ध होने पर भी इतनी साहसी है उसका पुत्र क्यों न महान् वीर होगा। वृद्धा अधिक समय तक सरदार का सामना न कर सकी। उसकी तलवार टूट गई और तलवार के दो टुकड़े होते ही विपक्षी के भरपूर वार ने उसका काम तमाम कर दिया। उधर नाथूसिंह भी लड़ते लड़ते घायल होकर गिर पड़ा। अब मुगल सेना का सामना करने वाला वहां कोई न रह गया था। सब लोग वहां से वापस चले गये।

मुगल सेना के जाने के कुछ समय बाद नाथूसिंह को होश आया। वृद्धा का निर्जीव शरीर देखकर वह अपना दुख भूल गया और बच्चों की तरह फूट फूट कर रोने लगा। इसी माता ने उसका भी पालन पोषण किया था और अपनी सन्तान के समान ही उससे स्नेह का व्यवहार किया था। वह घर मे नौकरों की तरह न रह कर आत्मीय जन की भांति ही रहता था। दुर्गादास उसी के विश्वास पर माता को उसके पास छोड़ गया था। अब वह क्या मुंह लेकर दुर्गादास के पास जायगा और किन शब्दों मे माता की मृत्यु का समाचार सुनायेगा। उसने आत्महत्या का विचार किया किन्तु दूसरे ही क्षण उसने सोचा कि यदि वह न रहा तो माता की मृत्यु का समाचार दुर्गा-दास को कसे मालूम होगा और पापी शमशेरखां को अपनी करनी का फल कसे मिलेगा। इन्हीं विचारों में सारी रात व्यतीत हो गई और सवेरा हो गया।

अपने घावों की तनिक भी परवाह न करते हुये नाथूसिंह दुर्गादास की खोज मे घर से निकल पड़ा। दुर्गादास का निश्चित

पता उसे मालूम न था किन्तु यह वह जानता था कि वह यहीं कहीं पास में पहाड़ियों में छुप रहा है। खोज बीन के बाद नाथूसिंह को सफलता प्राप्त हुई। दुर्गादास उसकी शक्ल देखकर घबड़ा गया। नाथूसिंह का शरीर इस समय भी घायल हो रहा था। दुर्गादास ने उसे शांति से अपने पास बिठाया यद्यपि उसका हृदय माता का हाल जानने के लिये बड़ा बेचैन हो रहा था। नाथूसिंह के घावों को धोकर दुर्गादास ने अपने हाथों से मरहम पट्टी की। नाथूसिंह अचानक रो पड़ा। उसकी आंखों से अविरल आंसुओं की धारा बह चली।

दुर्गादास ने नाथूसिंह का यह हाल देखकर उससे रोने का कारण पूछा। नाथू ने सारा हाल विस्तार सहित बता दिया और वृद्धा माता की वीरतापूर्ण लड़ाई का भी वर्णन किया। दुर्गादास को जिस बात की आशंका थी वही हुआ। जो वीर बड़े से बड़े संकट आने पर भी कभी न दहला और अकेला ही मौत के मुँह में जाने को सदैव तैयार रहता था वही वीरवर माता के निधन समाचार को सुन कर विचलित हो गया। क्रोधावेश में उसने तलवार निकाल ली और उसी समय प्रण किया कि जब तक पापी शमशेरखां से अपनी माता के खून का बदला न ले लूँगा अन्न जल भी ग्रहण न करूँगा। प्रतिज्ञा बड़ी कठोर थी और ऐसी दशा में मुगल सेनापति का जिसके पास अगणित सैनिक हैं सामना करना हंसी खेल न था। किन्तु वीर लोग इस बात का विचार ही कब करते हैं। प्रण करते समय आवेश में उन्हें आगे पीछे का ध्यान ही नहीं रहता। नाथूसिंह भी अपने स्वामी की ऐसी भयंकर प्रतिज्ञा सुनकर एक बार तो कांप उठा।

दुर्गादास वहाँ एक क्षण भी न रुका। नंगी तलवार लिये हुये ही वह वहां से चल पड़ा। नाथूसिंह भी उसके साथ था। कुछ

दूर जाने पर ही उन्हें कुछ घुड़सवार अपनी ओर ही आते हुये नजर आये। समीप आने पर विदित हुआ कि वे राजपूत ही थे। दुर्गादास को इस प्रकार तेजी से क्रोधावेश मे जाते हुये देखकर उन्होने उसे रोका और सारा हाल पूछा। नाथूसिंह ने संक्षेप मे सारा हाल सुना दिया और दुर्गादास की प्रतिज्ञा की बात भी कह दी। शमशेरखां की नीचता सुनकर राजपूतों के खून में उबाल आगया और उन्होने दुर्गादास की सहायता का वचन दिया। वे सब लोग दुर्गादास के साथ हो लिये। इसी प्रकार मार्ग में जो भी शस्त्रधारी राजपूत मिला वही उनके साथ हो गया। कंटालिया पहुंचते पहुंचते दुर्गादास के साथ एक छोटी सी सेना हो गई। दुर्गादास ने सब वीरों को उत्साह दिलाते हुये घोर गर्जन किया—"भाइयो! अन्याय का दमन करने के लिये ही आज मैंने यह प्रण किया है। एक अबला को अपमानित करने का फल अवश्य ही अत्याचारी मदान्ध मुगल सरदार को चखाना होगा। सत्य की सदैव जय होती है। सत्य हमारे साथ है और भगवान हमारा सहायक है। यदि हम अपने प्रण पर अड़े रहेगे तो निश्चय ही अत्याचार और अन्याय का समूल नाश करने मे सफल होंगे।"

वीर प्रतिज्ञ दुर्गादास के ओजस्वी भाषण को सुनकर सभी वीरो के भुजदण्ड फड़क उठे और "हर हर महादेव" "भगवान एकलिंग की जय" की ध्वनि से वातावरण गूंज उठा। सब ने म्यान से तलवारें निकाल लीं और जोश के साथ चिल्लाकर कहा—"हम शत्रु से माता के खून का बदला अवश्य लेगे।"

चलते चलते रात हो गई थी किन्तु जोशीले जवानों ने चलना बन्द न किया। उन्हें तो कंटालिया पहुँचना था। आधी रात के लगभग वे लोग कंटालिया जा पहुँचे। पहुँचते ही गढ़ पर धावा

बोल दिया गया। बेचारे मुगलों को स्वप्न में भी यह विचार न आया था कि आधी रात के समय उनके सुख में इस प्रकार बाधा पहुँचेगी। द्वार पर ही मारकाट मच गई। राजपूत जोश में भरे हुये थे और मुगलों को मारते काटते गढ़ में प्रवेश कर रहे थे। सारे गढ़ में शोर मच गया। कोई शस्त्र संभालता था, कोई वस्त्र। कोई भागने की चेष्टा करता था तो कोई जान बचाने के लिये इधर उधर छुपने का प्रयास कर रहा था।

शमशेरखां के सुख के स्वप्न भी भग हो गये और वह झपट कर अपने कमरे से तलवार लेकर निकला। सामने ही दुर्गादास से उसकी टक्कर हुई। देखते ही उसके होश उड़ गये। दोनों में युद्ध ठन गया। बेचारा शमशेरखां जोश में भरे हुये दुर्गादास के सामने कब तक ठहर सकता था। वह क्षत्रिय वीर की उग्रमूर्ति देखकर पहले ही दहल चुका था। कुछ क्षण तक लड़ने के उपरान्त ही उसका सिर धड़ से अलग हो गया। दुर्गादास ने सन्तोप की सांस ली।

उसी समय कुछ राजपूत वीरों ने शमशेरखां की माता और उसकी नवयौवना सुन्दरी कन्या को दुर्गादास के समक्ष लाकर उपस्थित किया! मुगल सरदारों के हरम में खलबली मच गई। स्त्रियां इधर उधर भागने लगीं। दुर्गादास को यह अच्छा न लगा। उसने उसी समय राजपूत वीरों को सावधान किया कि कोई वीर किसी स्त्री के हाथ न लगाये। सरदार की माता और कन्या को भी उसने वापस भेज दिया और कहा—"भाइयो! हम किसी के पाप का अनुकरण करना नहीं चाहते। इन माताओं, बहनों बेटियों ने हमारा क्या बिगाड़ा है? इनको सताना बुद्धिमानी नहीं। ऐसा करने से हम अपना पतन करके आदर्श हीन हो जायेंगे। राजपूत लोग दूसरों की मां बहिनों को अपनी मां बहनों

के समान समझते हैं और सदैव नारी जाति का आदर व सम्मान करते रहे हैं। शमशेरखां ने जैसा किया था उसका फल उसे मिल गया। अब हमारा यह कर्त्तव्य नहीं कि उसकी दुष्टता का वदला हम उसकी मां बहनों से लें ?"

मुग़ल महिलाओं ने दुर्गादास को धन्यवाद दिया और उसके आदर्श की भूरि भूरि प्रशंसा की। दुर्गादास ने युद्ध वन्द करने का आदेश देकर सबको वहां से चलने की आज्ञा दी। उसे अभी अपने घर वापस जाना था। अपनी प्रतिज्ञा पूर्ति के उद्देश्य से ही पहले वह यहां आया था। प्रण पूर्ण हो गया और सत्य की विजय हुई। सब लोग हर्ष ध्वनि करते हुए कल्याणगढ़ की ओर चल दिये।

कल्याणगढ़ में प्रवेश करते ही लोगों ने जो कुछ देखा वह कम आश्चर्य का विषय न था। सारा गांव उजाड़ दिया गया था। केवल दुर्गादास का घर ही नहीं सारा गांव जला कर राख कर दिया गया था। गांव की ऐसी दुर्दशा देख कर सबको वड़ा दुख हुआ। दुर्गादास तो वहां अपनी माता की अन्तिम दाह क्रिया करने आया था परन्तु वहां यह हाल देखा। मुगल सेना की नृशंसता देखकर दुर्गादास की आंखों के डोरे फिर लाल हो गये। कुछ युवकों ने दुर्गादास को सलाह दी कि ऐसी ही दशा कंटालिया की भी करनी चाहिये। पत्थर का जवाव जव तक पत्थर से न दिया जायेगा तव तक शत्रुओं के कान के कीड़े न झड़ेंगे। दया का व्यवहार उसी के साथ करना उचित है जो दया को पात्र हो। लोगों के वहुत कुछ कहने सुनने पर भी दुर्गादास को अपने साथियों का यह प्रस्ताव पसन्द न आया। उसने कहा—"हमें अत्याचारियों को ही अन्याय का फल चखाना है किन्तु उनके साथ निरपराधों की हत्या करके अपने हाथों को

खून से नहीं रंगना है। हम यह जानते हैं और अब भली भांति जान गये हैं कि जो लोग हमारी स्वतंत्रता को नष्ट करने वाले हैं, हमारी माताओं बहनों की आबरू पर डाका डालने वाले हैं और निर्दोषों की अकारण ही हत्या करने वाले हैं उन लोगों से हमारी मित्रता स्थापित नहीं हो सकती। संतोष करके बैठने का समय अब नहीं है। हमें प्रतिज्ञा करनी होगी कि हम अपनी जन्मभूमि को स्वाधीन बनाकर ही दम लेंगे। मारवाड़ को अधिक अपमानित होते हुये हम नहीं देख सकते। पहाड़ियों में छिप २ कर अपने प्राणों की रक्षा करना अब हमारा धर्म नहीं रह गया है। हमारी तलवारें उस समय तक म्यान में नहीं जायेंगी जब तक हम मारवाड़ प्रदेश को स्वतंत्र न कर लेंगे और अत्याचारियों के चंगुल से अपनी माता-जननी जन्मभूमि को मुक्त न कर लेंगे।" दुर्गादास ने यह कहते हुये म्यान से तलवार निकाल ली। सब वीरों ने भी जोश में आकर म्यान से तलवारें निकाल कर जन्मभूमि को स्वाधीन बनाने का प्रण किया।

मारवाड़ को स्वाधीन बनाने के लिये सेना की आवश्यकता थी क्योंकि थोड़े से राजपूतों द्वारा यह महान कार्य सम्पन्न होना सम्भव न था। सेना का संगठन होना अत्यन्त आवश्यक था। सब राजपूतों ने संगठन कार्य करने की प्रतिज्ञा की और शीघ्र ही इस कार्य में जुट जाने का पक्का विचार कर लिया। सब राजपूत वीर वहाँ से चले गये और दुर्गादास भी अपने कुछ साथियों सहित अरावली की पहाड़ियों में चला गया। उन दिनों दुर्गादास का निवास पहाड़ियों में ही होता था क्योंकि शत्रु उसके पीछे लगे हुए थे और उसके प्रत्येक कार्य पर पूरी दृष्टि रखते थे।

जिस समय दुर्गादास कल्याणगढ़ से वापिस जा रहा था उसी समय उसने देखा कि एक अश्वारोही उन्हीं की ओर तेजी

से भागता हुआ आ रहा है। दुर्गादास उसके समीप आने की राह देखने लगा। कुछ क्षण में ही वह अश्वारोही दुर्गादास के निकट आ पहुँचा। वह एक नवयुक था जो देखने में बड़ा सुन्दर और कम उम्र का ही मालूम होता था। आते ही वह घोड़े से उतर पड़ा और उसने दुर्गादास को बड़े आदर से झुक कर प्रणाम किया।

दुर्गादास ने उससे पूछा—

"तुम कौन हो? मैं तुम्हें पहचान न सका। शायद मैंने आज से पहले तुम्हें कभी नहीं देखा है।"

"हो सकता है कि आप मुझे न जानते हों किन्तु आपने मुझे पहले देखा अवश्य है।" नवयुवक ने सादर उत्तर दिया।

"मुझे याद नहीं पड़ता। क्या तुम मेरे लिए कोई विशेष समाचार लेकर आये हो?"

"जी हाँ, मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि इस समय आपका यहाँ रहना खतरे से खाली नही है क्योंकि कंटालिया पर जो आपने अभी आक्रमण किया है उसकी सूचना बिजली की भाँति सब जगह आसपास पहुँच चुकी है और निश्चय ही मुगल सैनिक आपसे इसका बदला लिये बिना न छोड़ेंगे। मेरा विचार है कि उन्हें आपके यहाँ आने का समाचार मालूम है और वे लोग शीघ्र ही यहां आने वाले होंगे इसलिए आप अपनी रक्षा का उपाय शीघ्र ही सोच लीजिए या उनका सामना करने की तैयारी कर लीजिये। मैं आपको यह भी बता दूँ कि कंटालिया के सरदार के खून का समाचार शायद देहली भी भेजा जा चुका है। आप जानते ही हैं कि ऐसी बातों में देरी नहीं की जाती।" नवयुवक ने कहा।

"मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ नवयुवक! तुमने यह सूचना देकर हमारा बड़ा उपकार किया है। समय पर सावधान हो जाने से बहुत लाभ होता है। यह हमें पहले से ही मालूम था कि हमारे आक्रमण का यही परिणाम होगा किन्तु हम परिणाम से डर कर बैठना नहीं जानते। हमें न पड़ौसियों का भय है न मुगल सम्राट औरंगजेब का। हमने प्रण कर लिया है कि अत्याचार व अन्याय का दमन करने में यदि हमारे प्राणों की आवश्यकता होगी तो हम सहर्ष अपने जीवन का वीरता पूर्वक अन्त कर देंगे किन्तु इस प्रकार पाप व अन्याय को फूलता फलता न देख सकेंगे। हमारा विरोध मुगलों या मुसलमानों या किसी भी जाति विशेष से नहीं है। हम तो उन लोगों के शत्रु हैं जो पापी, अन्यायी व दूसरों की स्वतन्त्रता के बाधक हैं चाहे वह किसी भी जाति या समाज के हों" दुर्गादास ने कहा।

"आपके विचार बहुत उच्च और सच्चे हैं।" नवयुवक ने समर्थन किया।

"नवयुवक! क्या तुम अपना परिचय देकर हमारी उत्सुकता दूर कर सकते हो? अपने शुभचिन्तक का परिचय प्राप्त करना हम आवश्यक समझते हैं।" दुर्गादास ने नवयुवक की ओर कृतज्ञता पूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा।

"मैं आपको अधिक समय तक धोखे में रखना नहीं चाहता। आपको याद होगा जिस समय कंटालिया के मुगल सरदार का आपने वध किया था उस समय आपके सामने स्त्रियाँ लाई गई थीं और उन्हें अभयदान दे दिया गया था..............."

"हां २ मुझे खूब याद है तो उस समय तुम............"

"जी हां, मैं उन्हीं स्त्रियों में से एक हूँ। कंटालिया के मुगल सरदार शमशेरखां मेरे पिता थे।" यह कह कर नवयुवक ने

अपने सिर से साफा उतार लिया। उसके लम्बे घुंघराले केश हवा में लहराने लगे। नवयुवक के स्थान मे सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति एक नवयुवती खड़ी थी। सब लोग चकित होकर उसको देखने लगे। दुर्गादास ने भी आश्चर्य चकित होकर पूछा—

"क्या तुम शमशेरखां की पुत्री हो ?"

"जी हां ! मैं उनकी ही कन्या हूँ और मेरा नाम हमीदा है।"

"तब तो मैं तुम्हारा शत्रु हूं क्योंकि मैंने ही तुम्हारे पिता का वध किया है। अपने पिता के घातक का शुभचिन्तन करने का साहस तुमने कैसे किया ? क्या ऐसा करने में कोई रहस्य है ?"

"आप विश्वास करें या न करें यह आपकी इच्छा पर निर्भर है किन्तु मैं सौगन्ध पूर्वक कहती हूँ कि मेरी भावना स्वार्थ व प्रतिकार रहित है। आपके पवित्र आदर्श का मुझ पर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि मैं अपना घर छोड़ने के लिए विवश हो गई हूं और अब आपकी ही शरण में रह कर सेवा कार्य करना चाहती हूँ। अन्याय का पक्ष छोड़ कर मैं सत्य का पक्ष ग्रहण करने का पक्का विचार कर चुकी हूँ।" हमीदा ने कहा।

"तुम्हारे विचार वास्तव में स्तुत्य हैं। यदि तुम्हारी हार्दिक इच्छा ऐसी ही है तो तुम शौक से हमारे साथ रह सकती हो। मैं किसी जगह तुम्हारे रहने का प्रबन्ध शीघ्र ही कर दूंगा।" दुर्गादास ने कहा।

मेरी इच्छा तो यह है कि मैं पुरुष वेष धारण करके सैनिक जीवन व्यतीत करूं। घोड़े की सवारी मुझे आती है और थोड़ा अभ्यास तलवार चलाने का भी है। आपके साथ रह कर मुझे विश्वास है कि मैं कुछ सेवा कार्य कर सकूंगी।" हमीदा ने कहा।

"अच्छा बेटी जैसी तुम्हारी इच्छा। तुम्हारे पिता अब नहीं हैं इसलिये तुम अपने पिता के स्थान मे मुझको समझो।" दुर्गादास ने

स्नेह दरसाते हुए कहा। हमीदा ने भी श्रद्धा से दुर्गादास के सामने सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद ग्रहण किया।

हमीदा ने अपने बिखरे हुए केशों को समेट कर बांध लिया और सिर पर पगड़ी बांधकर अपना वेष पुरुषों का सा बना लिया। अब वह हमीदा न होकर "हमीदखां" बन गई और दुर्गादास के साथ ही रहने लगी। दुर्गादास अपने साथियों के साथ अरावली की पहाड़ियों की ओर जा रहा था। हमीदा को दी गई सूचना के अनुसार वहां ठहर कर समय नष्ट करना और नई मुसीबत मोल लेना व्यर्थ ही था।

दुर्गादास को अब महाराज महासिंह का भी ध्यान आया। महासिंह अपने घर मांडों चले गये थे। दुर्गादास की इच्छा थी कि उन्हें भी सब बातों से सूचित करके मारवाड़ के स्वातंत्र्य युद्ध में सम्मिलित होने को प्रेरित किया जावे। मार्ग में ही उन्होंने यह विचार किया कि किसी को उनके पास भेजना चाहिए ताकि उनके विषय में भी कुछ विदित हो सके। ऐसा विचार होते ही उन्होंने अपने चार पांच साथियों से इस विषय में परामर्श लिया, उन्होंने भी समर्थन ही किया। अतः अपने विश्वासी साथी व नौकर नाथूसिंह को दुर्गादास ने मांडो के लिये रवाना होने को कहा और स्वयम् सब लोगों के साथ पहाड़ी की ओर चल दिया। दुर्गादास ने हठ करके हमीदा को भी नाथूसिंह के साथ ही मांडों भेज दिया ताकि वह वहां महासिंह के परिवार से परिचित हो सके।

चौथा परिच्छेद

"मांडों का पतन"

"क्या यह बिल्कुल सच है ?" मुगल सरदार इनायतखां ने आश्चर्य से कहा।

'हां बिल्कुल ठीक कह रहा हूँ मैं। महासिंह को आप सीधा आदमी समझते हैं ? अजी जनाब वह विष की गांठ है। ऐसे आदमी कभी विश्वास के योग्य नहीं होते।" चन्द्रसिंह ने उत्तर दिया।

"आप ठहरे भोले भाले। बहादुर तो भोले भाले होते ही हैं। यही एक अवगुण तो शूरवीरों में होता है। आपको मालूम है जोरावरखां का खून क्यों हुआ था ? यह सब उसी महासिंह की कारस्तानी थी वरना ऐसे बहादुर को आप कभी न खोते।"

"यह तो मुझे मालूम हो गया कि जोरावर खां के खून का असली कारण वही था और दुर्गादास उसके कारण बीच में पड़ा था।"

"यदि दुर्गादास उस समय न आगया होता तो अवश्य ही महासिंह का अन्त हो जाता और मेरी भी मनोकामना पूर्ण हो जाती।"

"आपकी मनोकामना ? इसका क्या मतलब ? महासिंह से आपका क्या सम्बन्ध है ?"

"मेरा सम्बन्ध ? क्या आपको मालूम नहीं ? मैं महासिंह की कन्या लालवा से प्रेम करता हूँ किन्तु जब तक महासिंह जीवित

है मेरा विवाह उससे नहीं हो सकता। महासिंह उसका विवाह किसी अन्य राजपूत सरदार से करना चाहता है।"

"तो यूं कहिये कि आप महासिंह से द्वेष रखते हैं इसलिये उसे विपत्ति में डालना चाहते हैं और उसका अहित करके अपना कार्य बनाना चाहते हैं।" इनायतखां ने मुसकराते हुए चन्द्रसिंह की तरफ देखकर कहा।

"यह सोचकर आप भूल कर रहे हैं। इस काम में मेरा स्वार्थ अवश्य है लेकिन इसमें आपका भी हित है। अगर आप महासिंह की ओर से निश्चित रहेंगे तो याद रखिये कि मुगल साम्राज्य के रास्ते का यह कांटा आगे जाकर त्रिशूल का रूप धारण कर लेगा। आपको मालूम नहीं है कि वह बड़ा पक्का राजद्रोही है और राजपूतों में राजद्रोह की आग भड़का रहा है। दुर्गादास को उसी ने मुगलों के विरुद्ध उकसाया है। कहीं ऐसा न हो कि आपके शान्त रहने से यह आग भड़कती रहे और इसकी चिनगारियों का प्रभाव मुगल शासन को कुछ हानि पहुँचाये।" चन्द्रसिंह ने कहा।

इनायतखां बड़े ध्यान से चन्द्रसिंह की बातें सुनता रहा और उसके दिल पर उसकी बातों का प्रभाव पड़े बिना न रहा। वह बड़ा चालाक और धूर्त था किन्तु चन्द्रसिंह ने उस पर भी अपना रंग जमा ही दिया। इनायतखां को महासिंह के राजद्रोह की आग भड़काने की बात सुनकर चिन्ता हो गई। उसने सोचा कि यदि वास्तव में ऐसा हो गया तो मुगलों की दशा राजस्थान में शोचनीय हो जायगी और फिर मुगल सम्राट भी स्थिति को सम्हालने में असमर्थ हो जायेगा। इसलिये अच्छा यही है कि पौधे को बढ़ने से पहले ही समूल नष्ट कर दिया जाये। मुगल सम्राट भी उसके इस कार्य से प्रसन्न होंगे।

इनायतखां चन्द्रसिंह को पहले से ही जानता था। उसे यह भी मालूम था कि चन्द्रसिंह बड़ा चालाक और मक्कार है साथ ही वीर भी है किन्तु अन्य राजपूत वीरों की भाँति वह देश, जाति का प्रेमी नहीं है। अपने स्वार्थ के लिये चन्द्रसिंह देश, जाति के हित की परवाह न करके कुछ भी कर सकता है, यह बात इनायतखाँ को मालूम हो गई थी। उसने इस अवसर पर चन्द्रसिंह को मिलाये रखने में ही भलाई समझी क्योंकि घर का भेदी ऐसे मामलो में बड़ा सहायक सिद्ध होता है। मुगल शासक उस समय में इन सब बातों में बड़े चतुर थे। उनकी नीति भी यही थी कि किसी भी उपाय से राजपूतो में फूट पड़ जाये और उनमें संगठन न होने पाये। इसीलिए वे लोग नाना प्रकार के प्रलोभन द्वारा राजपूत वीरों को अपनी ओर मिला लेते थे। मुगल सम्राट अकबर ने अपनी कूटनीति द्वारा ही राजपूतों को अपना मित्र बना लिया था। यद्यपि मुगल सम्राट औरङ्गजेब अकबर के समान नीति व्यवहार मे न ला सका और यही उसकी असफलता का कारण भी हुआ किन्तु फिर भी वह फूट डालने की नीति व्यवहार में लाता ही रहता था।

औरंगजेब यह चाहता था कि राजपूत लोग उसके सेवक बन कर रहें। राजपूतो में जो बड़े बड़े शूरवीर थे और जिनसे वह भय खाता था उन्हे वह समाप्त कर देना ही उचित समझता था। उन्हें मित्र बनाकर सदैव अपने साथ रखना भी उसे पसन्द न था क्योंकि उसे किसी का विश्वास न था। महाराज जसवन्त सिंह यद्यपि उसके दरबार में थे किन्तु वह उनसे सदैव भयभीत रहता था और इसीलिये उसने उन्हें काबुल की लड़ाई में भेजकर धोखे से मरवा डाला। उनके दो पुत्र तो पहले ही युद्ध में मारे जा चुके थे और सबसे छोटा पुत्र पृथ्वीसिंह भी औरंगजेब की दुष्ट नीति का शिकार होकर चल बसा था। उसकी वीरता पर

प्रसन्न होकर सम्राट औरङ्गजेब ने खिलअत (पोशाक) बख्शी थी। इस बेचारे को क्या मालूम कि वह जहर से बुझी हुई थी। उन दिनों महाराज जसवन्तसिंहजी काबुल में पठानों के दांत खट्टे कर रहे थे। पृथ्वीसिंह इस पोशाक को पहनने के बाद अधिक समय जीवित न रह सके और जहर की तेजी से छटपटा कर मर गये। सम्राट ने राजकुमार की मृत्यु का बहाना हृदय की गति का रुक जाना कर दिया और प्रकट रूप में शोक भी प्रदर्शित किया। महाराज जसवन्तसिंहजी को पृथ्वीसिंह की मृत्यु के समाचार से बहुत दुःख हुआ और उनका जीवन शोक-मय हो गया। इसके कुछ समय बाद ही उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के समय उनकी महारानी गर्भवती थीं जिनकी रक्षा के लिये महाराज जसवन्तसिंह के परम विश्वासी सेनानायक दुर्गादास को नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ा क्योंकि औरंगजेब उनके पीछे भी पड़ा हुआ था और उन्हें अपनी ही संरक्षता में रखना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि नवजात राजकुमार अजीतसिंह को भी धोखे से समाप्त कर दिया जाये और इस प्रकार मार्ग बिल्कुल साफ हो जाये।

•

जिस समय का हाल हम यहां लिख रहे हैं उन दिनों जोधपुर राज्य पर मुगलो का अधिकार था और सम्राट औरंगजेब की आज्ञा के अनुसार स्वर्गीय महाराज जसवन्तसिंह के पुत्र अजीतसिंह की खोज में मुगल लोग परेशान थे। कहीं जरा सा भी पता मालूम हो जाता तो जमीन आसमान एक कर देते थे किन्तु उनकी सारी चेष्टायें निष्फल हो जाती थीं क्योंकि दुर्गादास ने राजकुमार को अत्यन्त सुरक्षित रूप से ऐसे स्थान में एक ब्राह्मण (जयदेव) के घर रक्खा था जहां किसी को राजकुमार के होने का स्वप्न में भी अनुमान नहीं हो सकता था।

इस रहस्य को दुर्गादास के अतिरिक्त कुछ परम विश्वासी व्यक्ति ही जानते थे, सब लोगों को यह बात मालूम नहीं थी।

इनायतखां भी इसी उधेड़ बुन में लगा हुआ था कि यदि राजकुमार का किसी प्रकार पता लग जाये तो सम्राट की नजरों में उसका आदर मान अधिक हो सकता है। दुर्गादास से बात करने का साहस ही उसे न होता था। उसका नाम सुनते ही इनायतखां क्या बड़े बड़े शूरवीर मुगल सरदारों के दिल दहल उठते थे। चन्द्रसिंह को सहयोगी पाकर इनायतखां को परम हर्ष हुआ क्योंकि उसे यह विश्वास हो गया कि ऐसे चालक व्यक्ति के द्वारा वह राजपूतों के कई रहस्य मालूम कर सकेगा।

इनायतखां चन्द्रसिंह से बातें कर ही रहा था कि दरवाजा खोल कर एक व्यक्ति ने प्रवेश किया। उसका चेहरा कुछ घबड़ाया हुआ सा दिखाई देता था। इनायतखां ने पूछा—"क्यों करामत? क्या बात है? घबड़ाये हुये से कैसे हो?"

"घबड़ाने की ही बात है हुजूर!..............." करामत ने सकुचाते हुये चन्द्रसिंह की ओर देखा।

"हां हां कहो न! इनकी चिन्ता न करो यह तो हमारे ही मित्र हैं" इनायतखां ने कहा।

"हुजूर! राजपूतों की ज्यादतियां बढ़ती जा रही है एक राजपूत सेना ने एक चौंकी (थाना) पर आक्रमण करके उसे लूट लिया और कई सैनिकों को मार डाला। लूट मार करके वे लोग वहां से ऐसे गायब हुये कि कहीं उनका पता ही न चला वरना हमारे दूसरे थाने के वीर सैनिक उनका डटकर सामना करते। हमने उनका बहुत दूर तक पीछा किया किन्तु वे कहीं नजर न आये।" करामत ने कहा।

"यह तो वास्तव में बड़ी बुरी खबर है करामत। बड़े खेद का विषय है कि राजपूत सेना ने थाना लूट लिया और हमारी सेना मुंह ताकती ही रह गई। क्या इसी वीरता के भरोसे पर हम राजद्रोहियों को दबाकर मुगलों का झण्डा राजस्थान में गाड़ने की आशा करते हैं। क्या तुम उस राजपूत सेना में से किसी को पहचानते हो या यह बता सकते हो कि वह किसकी सेना थी जिसने ऐसी हिम्मत की है?" इनायत खां की त्यौरियां चढ़ गई थीं।

करामत ने सहमते हुये उत्तर दिया—"हुजूर! पहचानता तो नहीं किन्तु यह अवश्य मालूम कर पाया हूँ कि उस सेना का सम्बन्ध शायद मांडो से कुछ न कुछ अवश्य है।"

इनायतखां मानों सोते से जाग पड़ा। चन्द्रसिंह भी चौंक उठा और सम्हल कर बैठ गया। उसके चेहरे के भाव बदलने लगे और उसी क्षण बोल उठा—"मांडों से सम्बन्ध है? तब तो अवश्य महासिंह का ही रचा हुआ यह षडयंत्र है। कहिये खां साहब अब तो आपको मेरे कहने पर विश्वास होगया न? यह सब महासिंह की ही करतूत है वरना किसको पड़ी है कि बैठे बिठाये आफत मोल ले।"

"हां आपका कहना ठीक है चन्द्रसिंहजी। हमें अब शीघ्र ही महासिंह को दबाने का प्रयत्न करना चाहिये। आप हमारे साथ ही रहिये और हमें आवश्यक सहयोग दीजिये। करामत! अब हम शीघ्र मांडो पर चढ़ाई करना चाहते हैं और महासिंह को राजद्रोह का सबक सिखाना चाहते हैं। मुगलों के विरुद्ध रहकर कोई शान्ति से अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। इनायत खां ने जोश के साथ कहा। इनायत खां की बात का करामत और चन्द्रसिंह दोनों ने जोरदार समर्थन किया।

चन्द्रसिंह को हर्ष होना तो स्वाभाविक ही था क्योंकि यह आग उसकी ही भड़काई हुई थी। वह प्रसन्न चित्त वहां से उठ खड़ा हुआ और इनायत खां से यह कर चला गया कि वह भी जाकर अब सेना का संगठन्न करेगा और शीघ्र से शीघ्र ही तैयार होकर सहायता के लिए उपस्थित होगा। इनायत खां को चन्द्रसिंह की सहायता पर विश्वास था क्योंकि वह जानता था कि इसमें उसका भी स्वार्थ है। उसे यह एक बड़ा भारी सहारा मिल गया कारण कि चन्द्रसिंह मांडो की स्थिति से खूब परिचित था।

चन्द्रसिंह रास्ते भर विचारों में डूबा हुआ ही रहा। वह बड़े बड़े मनसूबे बांध रहा था। "महासिंह से बदला लेने का यह कैसा अच्छा अवसर हाथ आया है। अब महासिंह पराजित होकर जिस समय मेरे सामने आयेगा वह अपना मुख भी लज्जा के कारण ऊपर न उठा सकेगा। उसका गर्व मिट्टी में मिल जायेगा और उसे मालूम हो जायेगा कि चन्द्रसिंह जो कुछ कहता है वह करके दिखाने का साहस भी रखता है। अब मैं उससे लालवा के लिये प्रार्थना न करूंगा। बल्कि विजय प्राप्त करके लालवा से बलपूर्वक विवाह करूंगा। लालवा की वह शान और वह अकड़ फिर कहाँ जायगी और जब उसे विवश होकर मेरा प्रस्ताव स्वीकार करना होगा तो वह किस प्रकार अपने पिता की मान रक्षा का ध्यान कर सकेगी। हः हः ह"—चन्द्रसिंह मन ही मन विचार करता हुआ जोर से हँस पड़ा। उसकी हँसी में वीभत्सता मिली हुई थी और थी पाप की भावना।

इधर इनायतखां ने अपना लश्कर सजाना प्रारम्भ कर दिया। अपनी सेना में उसने चुने हुये वीर लिये और केवल थोड़ी सी सेना वहां रक्षा के लिये छोड़ दी ताकि समय पर काम आसके।

एक विशाल सेना लिये इनायतखां मांडों पर चढ़ाई करने के लिये चल दिया। मांडो के समीप आते ही सेना के कई टुकड़े कर दिये गये। चन्द्रसिंह भी अपनी सेना के सहित मुग़ल सेना से मिल गया। गढ़ को घेरने का यही सबसे अच्छा अवसर था क्योंकि वहां किसी को स्वप्न में भी विश्वास न था कि अचानक आक्रमण हो जायगा। दुर्गादास भी वहां उपस्थित न था। वही एक ऐसा वीर था जिससे मुगल सेना घबराती थी किन्तु उन्होंने यह पहले ही मालूम कर लिया था कि वह किसी दूसरी जगह युद्ध करने में लगा हुआ था। चन्द्रसिंह के भेदिये सैनिकों ने गढ़ की सारी खबरें लाकर उन्हें पहिले ही दे दी थीं। चन्द्रसिंह ने यह भी पता लगा लिया था कि लालबा भी वहीं है। इनायत खां के आदेश से गढ़ को चारों ओर से घेर लिया गया और सारे नाके बन्द कर दिये गये।

गढ़ में महाराज महासिंह अपने भतीजे से मंत्रणा कर रहे थे। लालबा भी उस समय वहीं उपस्थित थी। दुर्गादास का समाचार बहुत दिनों से नहीं मिला था इसलिए उन्हें उसकी चिन्ता हो रही थी। महाराज महासिंह ने कहा—

"मुझे तो दुर्गादास जी से मिले काफी समय हो गया है। मेरे लिये ही उन्होंने इतनी मुसीबतें झेलीं। अपनी माता का वध भी उन्हें मेरे ही कारण देखना पडा। यदि वह मेरे बीच में न पड़ते तो क्यों उन्हें यह दिन देखना पड़ता? एक तो उनका परोपकार देखिये कि मेरे कारण उन्होंने अपना घर बार नष्ट करा दिया और दूसरी ओर मैं हूँ जो सुख से जीवन व्यतीत कर रहा हूँ और उन्हें भूला हुआ हूँ। वह मेरे विषय में क्या सोचते होंगे? अवश्य ही उन्हें मेरे प्रति घृणा उत्पन्न हो गई होगी।" यह कहते

कहते महासिंह खिन्न हो गये। उनकी बात समाप्त होने भी न पाई थी कि हमीदा ने प्रवेश किया और कहा—

"यह आपका भ्रम है महाराज! दुर्गादास जी का हृदय बड़ा उदार और विशाल है। उनके हृदय में कभी ऐसी भावना पैदा नहीं हो सकती। वह किसी से अकारण घृणा नहीं करते। आप यह न समझें कि वह यहां की स्थिति से नितान्त अपरिचित है। उनके भेदिये उन्हें सब जगह का पल पल का समाचार बताते रहते हैं।"

"क्या हमारे समाचार भी उनके पास पहुँचते रहते हैं?" महराज ने मुख पर आश्चर्य के भाव प्रदर्शित करते हुये पूछा।

"क्यों नहीं? क्या उनके भेदियों की यहां कमी है एक तो मैं ही हूँ।" हमीदा ने किंचित मुसकराते हुये उत्तर दिया। हमीदा की इस बात पर सब के मुख पर मुसकान आगई। लालवा ने भी मुसकराते हुये कहा—

"वहन हमीदा क्या तुम जासूसी भी करती हो? यह तो हमें आज ही मालूम हुआ। हम से मिलकर हमारा ही भेद दूसरो को देती हो।"

लालवा की बात समाप्त भी न हो पाई थी कि बाहर कुछ शोर गुल सुन कर सब चौंक पड़े। मानसिंह झपट कर उठा और बाहर गया। कुछ क्षण में ही वापस आकर बोला—"काका जी, मुगल सेना ने हम पर आक्रमण कर दिया है और हम यहां बैठे विनोद कर रहे हैं।"

"क्या मुगल सेना ने आक्रमण कर दिया है? क्यों? बिना किसी सूचना के ही। इसमें भी अवश्य कुछ रहस्य है। जाओ अभी सेना को तैयार करो और युद्ध के लिये तैयार हो जाओ।" महासिंह यह कहते हुये खड़े हो गये। मानसिंह भी महाराज

का आदेश पाकर चला गया। सेना की तैयारी होने लगी। आज्ञा की देर थी। वीर राजपूत मानों आज्ञा की ही प्रतीक्षा में बैठे थे। सब लोग अस्त्रशस्त्रों से सुसज्जित होकर शत्रु से मोर्चा लेने के लिये कमर कस कर खड़े होगये।

मुगल सेना गढ़ में प्रवेश करने की चेष्टा कर रही थी और राजपूत लोग उन्हें रोकने में लगे हुये थे। अचानक आक्रमण करने से कई स्थानों पर मुगलों ने राजपूतों को हराकर जयश्री अपना ली थी। गढ़ के चारों ओर घमासान लड़ाई होने लगी। मुगल सेना टिड्डी दल के समान गढ़ पर चढ़ आई थी। स्थिति बड़ी विकट और भयानक थी। मुगलों की संख्या राजपूतों से कहीं अधिक थी और इसके अतिरिक्त उन्होंने गढ़ को चारों ओर से घेर कर गढ़ में जाने आने के मार्ग भी बन्द कर दिये थे इसलिए बाहर से भी सहायता प्राप्त करने की आशा राजपूतों को नहीं रह गई थी। महाराज सहासिंह और मानसिंह दोनों ही बड़ी वीरता से युद्ध कर रहे थे। राजपूतों ने यद्यपि मुगल सेना के छक्के छुड़ा दिये थे किन्तु फिर भी वे उन्हें आगे बढ़ने से न रोक सके। मुगलों की ओर से चौमुखी मार पड़ रही थी। मुगल सेना गढ़ में प्रवेश करने में सफल होगई।

गढ़ में मुगलों के प्रवेश करते ही राजपूत लोग दूने जोश से लड़ने लगे किन्तु उन्हें अपनी विजय की आशा कम ही रह गई थी। यह देखते ही नाथूसिंह झपट कर महल के अन्दर पहुँचा जहां महारानी तेजवा अपनी कन्या लालवा और छमीदा के साथ बैठी हुई युद्ध के परिणाम की आतुरता से प्रतीक्षा कर रही थी। नाथूसिंह ने घबड़ाते हुये महारानी जी से युद्ध की स्थिति वर्णन की और यह भी बताया कि मुगल सेना की शक्ति इतनी है कि राजपूतों का जीतना कठिन हो रहा है। युद्ध के भावी परिणाम

का अनुमान करके महारानी कांप उठी। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि चन्द्रसिंह भी इस युद्ध में सम्मिलित है और मुगलों की ओर से लड़ रहा है तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। लालवा और हमीदा भी चन्द्रसिंह की नीचता देखकर बड़ी क्रुद्ध हुईं।

महारानी ने नाथूसिंह से कहा—"मुझे अपनी चिन्ता नहीं है किन्तु लालवा और हमीदा की चिन्ता से मैं परेशान हो रही हूँ। हम अपनी कुल मर्यादा को नष्ट होते नहीं देख सकते। मुगलों के विजयी होने पर इनका क्या परिणाम होगा यह तुम स्वयं ही जान सकते हो इसलिये अत्यन्त शीघ्र ही इनकी रक्षा का उपाय करो।"

"महारानी जी मैं तो यह सोचता हूँ कि इनके साथ ही आपकी रक्षा का उपाय होना भी आवश्यक है।"

"नहीं मैं तो जहां महाराजा रहेंगे वहीं रहूँगी और यही उचित भी है। तुम मेरी चिन्ता छोड़ दो और इनके बचाव का रास्ता सोचो। मेरी राय तो यह है कि तुम इन दोनों को लेकर महल के पिछली ओर की सुरंग से होकर बाहर निकल जाओ और फिर किसी सुरक्षित स्थान में चले जाना।" महारानी ने यह कह कर कातर दृष्टि से दोनों की ओर देखा।

यद्यपि लालवा और हमीदा भी महारानी को यहाँ छोड़ने के पक्ष में नहीं थीं किन्तु अधिक हठ करने का समय नहीं था। इसलिये दोनों नाथूसिंह के साथ सुरंग मे चली गईं। कुछ आवश्यक वस्त्र व शस्त्र इन्होंने अपने साथ ले लिये थे। सुरंग काफी दूर तक थी इसलिये भागते हुए जाने पर भी उन्हें रास्ता तय करने मे अधिक समय लग गया। रास्ते भर लालवा अपने माता पिता की ही याद करती रही और उसका मुख कमल मुरझा गया था। उसने कभी इस प्रकार माता पिता को नहीं छोड़ा था।

इकलौती होने के कारण माता पिता को उस पर अगाध स्नेह था और वह कभी उनकी आंखों से ओझल न हुई थी।

चलते चलते वे लोग सुरंग से बाहर निकल आये। वहां ठहरना भी उन्होंने उचित न समझा और आगे ही बढ़ते गये। लालवा को युद्ध का परिणाम जानने की बहुत उत्कंठा थी किन्तु नाथूसिंह ने उसे समझाया कि वहां रुकने से अहित होने की ही संभावना है। इसलिये आगे बढ़कर किसी सुरक्षित स्थान पर ही विश्राम करना उचित होगा।

परन्तु कुछ दूर आगे बढ़ने पर ही उन्हें घोड़ों की टाप के शब्द सुनाई दिये। सबके कान खड़े हो गए और वे लोग वृक्षों के पीछे आड़ में जा छुपे। हमीदा ने कहा—"इस प्रकार छुपने से काम न होगा। शस्त्रादि भी सम्हाल लेने चाहिये और यदि मौका आजाय तो लड़ने के लिये भी तैयार रहना चाहिये। लालवा और हमीदा दोनों ने पुरुष वेष धारण कर लिया था। समय और स्थिति को देखते हुये ऐसा करना आवश्यक ही था। अश्वारोहियों के निकट आने पर मालूम हुआ कि वे मुगल थे जो संख्या में दस बारह से कम न होंगे। दुर्भाग्यवश वे उसी ओर से गुजर रहे थे जहां नाथूसिंह, लालवा व हमीदा पेड़ के सहारे खड़े थे। अब इन लोगों ने छुपकर खड़ा रहना उचित न समझा और पेड़ के नीचे इस प्रकार बैठ गये मानों कुछ मालूम ही नहीं है और थक कर विश्राम कर रहे हैं।

मुगल सवार जब उनके पास होकर गुजरने लगे तो उन्हें इस तरह बैठा हुआ देखकर ठिठक गये। उनमें से एक ने गरज कर पूछा—"तुम लोग कौन हो?"

समय का विचार करते हुये नाथूसिंह ने उत्तर दिया—"हम लोग यहीं की प्रजा हैं और चलते चलते थक गये हैं इसलिये यहां विश्राम कर रहे हैं।"

"नहीं तुम झूंठ बोलते हो और डाकू नजर आते हो। तुम्हें शर्म नहीं आती जो हमें धोखा देकर अपनी प्राण रक्षा करना चाहते हो।" मुगल सैनिक ने कहा और अपने साथियों की ओर देखते हुये वह बोला—"इन्हें पकड़ लो। यह लोग बदमाश डाकू मालूम होते हैं।"

सैनिकों के आगे बढ़ते ही नाथूसिंह ने तलवार खींचली और गरज कर कहा—"तुम हमे इस तरह नहीं पकड़ सकते। मालूम होता है तुम इन्सान नहीं हो। किसी सभ्य मनुष्य से किस प्रकार का व्यवहार किया जाता है यह भी नहीं जानते। विना कारण ही किसी से झगड़ा मोल लेना क्या तुम्हें शोभा देता है?" नाथूसिंह को उस समय क्रोध आरहा था और वह निर्भीक वीर की भांति उन सैनिकों के सामने खड़ा हुआ था। यह लोग पैदल थे और मुगल सैनिक घोड़ों पर सवार थे। नाथूसिंह की गरज सुनकर मुगल सैनिक आपे से बाहर हो गये। सब अपने अपने घोड़ों से उतर आये और उन्होंने इन्हें पकड़ लेना शायद इतना आसान समझ रक्खा था कि नाथूसिंह की तलवार की कुछ भी परवाह न करते हुये उनमें से एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर उसे पकड़ने की कोशिश की। दोनों ओर तलवारें खिंच गईं। नाथूसिंह ने एक ही वार में अपने शत्रु को जो उसे पकड़ने के लिये तलवार निकाल कर आगे बढ़ा था समाप्त कर दिया। उसका सिर धड़ से अलग होकर पृथ्वी पर जा गिरा। अन्य मुगल सैनिक क्रोध से उन्मत्त होकर एक साथ नाथूसिंह पर टूट पड़े।

लालवा और हमीदा भी तैयार ही खड़ी थीं। दोनों ने तलवारें निकालकर नाथूसिंह की रक्षा की और उसको अकेले मुगल सैनिकों के बीच में घिरने न दिया। नाथूसिंह उस समय बड़ी वीरता से

लड़ रहा था और उसे अपने आगे पीछे का ध्यान बिल्कुल न था। मुगल सैनिक उसकी वीरता देख कर दंग रह गये। लालवा और हमीदा की वीरता और उनका युद्ध कौशल भी उस समय देखने ही योग्य था। मुगल सैनिक इन दोनों को साधारण नवयुवक ही समझ रहे थे किन्तु जब उनकी तलवारों की मार उन पर पड़ने लगी तो उन्हे छटी का दूध याद आगया। हमीदा और लालवा दोनों ही युद्ध कला कौशल की शिक्षा प्राप्त कर चुकी थीं और वे इस समय अपनी योग्यता की परीक्षा सफलता पूर्वक दे रही थीं।

अचानक एक नवयुवक मुगल वीर के हाथ का वार लालवा के सर पर पड़ा। लालवा ने अपनी तलवार से उसकी तलवार का वार तो रोक लिया किन्तु उसकी तलवार टूट गई और उसके सिर की पगड़ी भी उतर कर गिर पड़ी। पगड़ी के गिरते ही उसके लवे लम्बे वाल बिखर कर पीठ पर लहराने लगे। मुगल चौंक पड़ा और उसके मुँह से निकला—"अरे यह क्या ? पुरुष वेष में लड़की ?" उसने तलवार रोक ली। अन्य मुगलों ने भी यह हाल देखा। इस समय तक नाथूसिंह अकेला लड़ता लड़ता थक गया था और अन्त में घायल होकर गिर पड़ा था। हमीदा भी थक चुकी थी और उसके भी कई घाव लग चुके थे। मुगल सैनिकों ने युद्ध बन्द कर दिया और हमीदा को बन्दी बना लिया। नाथूसिंह घायल था और अचेत होकर पड़ा था इसलिये उसकी ओर किसी ने ध्यान न दिया। बन्दी अवस्था में भी हमीदा पेच ताव खा रही थी किन्तु शिथिल व शस्त्रहीन होने के कारण वह विवश हो चुकी थी। उसकी लाल आंखें यह प्रकट कर रही थीं कि वह अत्यन्त क्रुद्ध है।

एक मुगल सैनिक ने कहा—"इस बुड्ढे को तो यहीं पड़ा सड़ने दो और इस नौजवान कैदी को अपने साथ ले चलो।" दूसरे सैनिक ने कहा—"और यह लड़की ?" उसने लालवा की

ओर संकेत किया और कुछ मुसकराया भी। उसकी मुसकराहट में धूर्त्तता की झलक थी।

"वह तो अवश्य ही साथ चलेगी। उसे तो वहीदखां ने युद्ध में लड़कर प्राप्त किया है।" यह कहकर मुसकराते हुये उस सैनिक ने वहीदखां की ओर देखा। वहीदखां शान्त खड़ा हुआ था और उसकी तलवार म्यान में जा चुकी थी।

कुछ सोचकर वहीदखां बोला—"क्या आप लोग मेरी बात पर ध्यान देना पसन्द करेंगे?"

"क्यों नहीं?"

"तो ईन लोगों को बन्दी न बनाकर मुक्त कर दो। मेरी इच्छा यही है।"

"वाह! खूब कहा आपने। इतनी देर की मेहनत का क्या यही नतीजा निकला है?" एक सैनिक ने कहा।

मालूम होता है अभी तक आप इसी विचार में पड़े हुये थे और शायद इस सुन्दर लड़की ने आपके ऊपर कुछ जादू भी कर दिया है। अगर आपने यह मौका छोड़ दिया तो याद रखिये पछताना पड़ेगा। ऐसी सुन्दरता आपको दूर दूर न मिलेगी। हाथ में आया हुआ शिकार मुफ्त मे छोड़ देना बुद्धिमानी नहीं है, दूसरे मुगल सैनिक ने कहा।

"मैं आपके विचारों से सहमत नहीं हूं। यह लड़की अत्यन्त सुन्दर है और बहादुर भी मैं यह मानता हूँ किन्तु बिना किसी अपराध के इन लोगों को बन्दी बना लेना कहां का न्याय है। यदि मुझे पहले मालूम होता कि यह लड़की है तो मैं युद्ध ही न करता। वास्तव में यहां युद्ध छेड़ना ही हमारी भूल थी इसका हमें प्रायश्चित करना होगा। हमने जो इन लोगों को

कष्ट दिया है उसकी हमें इनसे क्षमा मांगनी होगी।" वहीदखां ने यह कहकर लालवा को सम्बोधित करते हुये कहा—"बहन! हमें क्षमा प्रदान करो। हम अपने कृत्य पर स्वयं लज्जित हैं। जाओ मैं तुम्हें स्वतंत्र करता हूँ और तुम्हारे इस नवयुवक साथी को भी मुक्त करता हूँ।"

"यह नहीं हो सकता। न यह नवयुवक ही मुक्त होगा और न यह लड़की ही। यदि तुम इसको वन्दी न करोगे तो हम इसे कैद करके अपने साथ ले जायेंगे"—मुगल सैनिकों में से एक ने कहा।

"यह कभी नहीं हो सकता। जिसे मैंने मुक्त कर दिया उसे तुम वन्दी नहीं बना सकते। मैं इसके लिये तुम्हारा पूर्ण विरोध करूंगा।" वहीदखां ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

'इसका नतीजा क्या होगा यह जानते हो? इस मूर्खता का फल तुम्हें क्या मिलेगा? यह मालूम है कि तुम शायद भूल गये हो कि यह उस आलमगीर शहशाह औरंगजेब का शासन काल है जो दीन इसलाम के विरुद्ध चलने वाले को कभी भी क्षमा नहीं करता।" मुगल सैनिक ने गंभीरता से कहा।

"क्या दीने इसलाम यही शिक्षा देता है कि बेगुनाहों को सताया जाये और मां बहनों की बेइज्जती की जाये? कोई भी धर्म ऐसे कामों का "सवाव" नहीं बता सकता। यह सब पाखण्ड है जिसने धर्म को बदनाम कर रखा है।" वहीदखां ने दृढ़ता से कहा।

"यदि ऐसा ही है तो तुम्हें भी वन्दी के रूप में इन लोगों के साथ चलना होगा। मालूम होता है तुम शत्रुओं से मिल गये हो और शहशाह की हुकूमत के ही नहीं बल्कि धर्म के भी विरुद्ध हो गये हो इसीलिये इस तरह की छींटाकशी करने की

हिम्मत कर रहे हो। धर्म व राज्य का द्रोही चाहे हमारा साथी या भाई कोई भी क्यों न हो हमारा घोर शत्रु है। तुम अब हमारे मित्र व भाई नहीं बल्कि हमारे विरोधी और राज्य के अपराधी हो। तुम्हे इसका उचित दण्ड दिया जायगा। बहादुरो! इन लोगों के साथ ही इस बागी को भी पकड़ लो और अपने साथ ले चलो।" यह सुनते ही सब लोग आगे बढ़े किन्तु उसी क्षण एक ओर से आवाज आई—"खबरदार!"

यह शब्द सुनते ही सब चौंक पड़े और जिस ओर से आवाज आई थी सब उसी ओर देखने लगे। सब ने देखा एक बलशाली युवक वीर घोड़े पर सवार होकर समीपवर्ती वृक्षों के झुरमट से निकल कर उनकी ओर ही आरहा है। देखने में वह बड़ा रौबदार व्यक्ति मालूम होता था। अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित वह वीर उनके सामने खड़ा हो गया।

"क्या बात है? क्यों शोर मचा रक्खा है?" युवक ने मुग़ल सैनिकों से पूछा। मुग़ल सैनिक क्रोधित तो हो ही रहे थे अब उनकी क्रोधाग्नि मे घी पड़ गया। फौरन उबल पड़े और आगन्तुक युवक के ऐसे रूखे और निर्भीक वचन सुनकर शान्त न रह सके। उनमें से एक ने आगे बढ़कर कहा—"तुम्हे क्या मतलब? तुम यहां क्यों आये हो? अगर अपनी भलाई चाहते हो तो सीधे चले जाओ वरना अभी तुम भी बन्दी बना लिये जाओगे या समाप्त कर दिये जाओगे।" उस बेचारे मुगल सैनिक ने वाक्य समाप्त ही किया था कि आगन्तुक वीर ने तलवार के एक वार में ही उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। बस फिर क्या था? मुगल सैनिकों ने सबको छोड़ कर उस वीर को घेर लिया। हमीदा भी मुक्त हो गई थी। नाथूसिंह को भी होश आ गया था। हमीदा

और लालवा ने भी शस्त्र ग्रहण कर लिए। वहीदखां भी उनके साथ हो गया। फिर घमासान युद्ध होने लगा। मुगल सैनिक कुचले हुए सर्प की भांति क्रुद्ध होकर वार कर रहे थे। दोनों ओर के वीर अपना युद्ध कौशल दिखाने में संलग्न थे। आगन्तुक वीर ने दो तीन मुगलों को तो समाप्त ही कर दिया। दो एक वहीदखां के हाथों मारे गये। एक एक दो दो को हमीदा व लालवा ने भी पूर्ण घायल कर दिया। नाथूसिंह अधिक घायल होने के कारण तेजी से युद्ध न कर सका किन्तु उनकी सहायता पूरी तरह कर रहा था। उसे लालवा व हमीदा का ध्यान विशेष रूप से था इसलिए उनके साथ ही युद्ध कर रहा था और उन्हें एक क्षण के लिए भी न छोड़ता था। युद्ध का परिणाम यह हुआ कि सब मारे गये और उनकी सूचना देने के लिये भी कोई बच कर न भाग सका। अगन्तुक वीर के आगमन से सारा झगड़ा ही शान्त हो गया।

युद्ध समाप्त होने पर आगन्तुक वीर की सलाह मानकर यहां ठहरना उचित न समझ कर सब लोग मुगलों के ही घोड़ों पर सवार होकर एक ओर चल दिये।

विश्राम के लिये काफी दूर जाकर सब लोग जंगल में ही एक घने वृक्ष के नीचे बैठ गये। यह विचार हुआ कि कुछ विश्राम करके फिर आगे बढ़ेंगे! पास ही पानी का भी प्रबन्ध था और आहार के लिये वृक्षों के कन्द मूल फल भी थे इसीलिये यह स्थान विश्राम के लिये निश्चित किया गया।

सबने अपने अपने घोड़ों को पेड़ों के पास ही हरी घास चरने के लिये छोड़ दिया और बैठ कर अपनी थकान मिटाने लगे। आगन्तुक वीर ने ही शान्ति को भङ्ग किया और कहा—"क्या मैं जान सकता हूँ कि आप लोग कैसे इन सैनिकों के

बीच घिर गये ? मुझे पूरा हाल तो मालूम नहीं है किन्तु कुछ कुछ अनुमान हो गया है क्योंकि मैं कुछ देर से पेड़ों के झुरमुट में छुपा हुआ तमाशा देख रहा था। इस मुगल नवयुवक की बातों से मैं वास्तव में प्रभावित हुआ हूँ और यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई कि इन दुष्टों के साथ रह कर भी इसके विचार इतने पवित्र और उदार है।"

"पत्थरों मे ही ढूंढने से हीरे मिल जाते हैं और कमल भी कीचड़ में ही पैदा होते हैं।" नाथूसिंह ने वहीदखां की ओर देख कर कहा। वहीदखां अपनी प्रशंसा सुनकर कुछ लज्जित व संकुचित सा हो गया।

"नवयुवक! तुमने वास्तव में प्रशंसा के योग्य कार्य किया है। यदि तुम चाहते तो इन सबका जीवन खतरे में डाल सकते थे किन्तु तुम्हारी उदारता के कारण ही इनकी प्राण रक्षा हो सकी है। मैं इधर से होकर जा रहा था किन्तु दूर से ही मुगलों को देखकर ठिठक गया और वृक्षों की आड़ में होकर चुपचाप सारा हाल देखने लगा। मैं उस समय आगया था जिस समय तुम अपने साथियों से इन्हें मुक्त कराने की प्रार्थना कर रहे थे।" आगन्तुक ने कहा।

"आप बहुत अच्छे समय पर आगये वरना इस समय तो हम लोग कैदखाने की हवा खाने के लिए तैयार होकर रास्ते में चल रहे होते।" वहीदखां ने कहा।

"अब तुम्हारा क्या विचार है ?"

"यदि आप अपने साथ रखने में मुझे अपना शत्रु न समझें तो मैं आपका मित्र बनकर रहना ही पसन्द करूंगा। मुगलों में जाकर रहना तो अब मेरे लिये असभव सा है। मुझे इन लोगों की नीति से घृणा हो गई है। मैं अब सच्चा मुसल-

मान बनकर ईमान के रास्ते पर चलना चाहता हूँ और अन्याय व अत्याचार की आग में यदि मुझे अपने शरीर की आहुति भी देनी पड़े तो मैं इसमें अपना महान गौरव समझूंगा।" वहीदखां ने कहा।

"यदि आपका ऐसा ही विचार है तो हमें आपको अपना मित्र बनाने में बड़ी खुशी होगी। हमारे सरदार वीरवर दुर्गादास आपके विचारों का स्वागत करेंगे। वह सच्चे वीर हैं और वीरों का आदर करते हैं किन्तु जो मिलकर दगा करते हैं उनके वह परम शत्रु हैं। हम उन्हीं के पास चल रहे हैं आप भी हमारे ही साथ चलिये।" नाथूसिंह ने वहीदखां से कहा।

"मैंने वीर दुर्गादास के बारे में बहुत कुछ सुना है। मुझे उनसे मिलकर बड़ी खुशी होगी। जो कुछ मेरे योग्य सेवा होगी मैं सदैव करने को तैयार हूँ।" वहीदखां ने कहा।

कुछ देर सब लोग शान्त रहे फिर यह विचार किया गया कि हाथ मुंह धोकर कुछ नाश्ता वगैरा कर लिया जाये। समीप ही एक नाला बह रहा था जिसका जल अत्यन्त स्वच्छ था। सब लोग उधर ही चल दिये। रास्ते में चलते चलते सब आपस में बात करते जारहे थे। आगन्तुक वीर का परिचय अभी किसी को न मिला था और बातो में किसी ने उससे पूछा भी नहीं। सब लोगों ने यही सोचा कि कोई राजपूत वीर होगा और कहीं जा रहा होगा। मार्ग में यह घटना देख कर रुक गया है। ऐसे अपरिचित व्यक्ति बहुधा मार्ग में मिल ही जाया करते हैं। वह समय ही ऐसा था जब कि बड़ी बड़ी दूर के व्यक्ति अनायास ही मिल जाते थे। राजपूत लोग अधिकतर इधर उधर ही रहा करते थे और उनका कोई निश्चित स्थान नहीं था।

नाथूसिंह ने पूछ ही तो लिया—"जिसने हमारा उपकार किया और ऐसी विपत्ति के समय हमारी प्राण रक्षा की उसका नाम भी हमें मालूम नहीं है इससे अधिक आश्चर्य की बात क्या हो सकती है। क्या आप कृपा करके अपना परिचय दे सकते हैं?

"हां क्यों नहीं? मेरा नाम जयसिंह है और मैं उदयपुर के महाराणा राजसिंहजी का पुत्र हूँ।"

परिचय सुनकर सब आश्चर्य चकित हो राजकुमार की ओर देखने लगे। महाराणा राजसिंहजी के यश व प्रताप से सभी परिचित थे। इन्हीं यशस्वी वीर महाराज का राजकुमार इस समय उनके निकट है यह जानकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। उदयपुर के शासको का मान व आदर राजस्थान के सभी राजपूत राजाओ से अधिक समझा जाता था और जनता मे भी उनके प्रति श्रद्धा के भाव थे कारण कि वहां के राणा सदैव स्वतन्त्रता के उपासक रहे और उन्होंने कभी मुगलों के आगे सिर न झुकाया। राजा राजसिंह जी भी मेवाड़ के स्वतन्त्र शासक थे और मुगल सम्राट औरंगजेब उनसे सदैव भयभीत रहा करता था। सम्राट महाराणा को अपने आधीन करने में सदैव असमर्थ रहा और इसलिये वह उनसे द्वेष भी रखता था।

राजकुमार जयसिंह को अपने सहायक के रूप में पाकर सब ने गर्व का अनुभव किया और उनकी बड़ी प्रशंसा की। वह अभिमान रहित होकर सबके साथ मित्रता का व्यवहार कर रहे थे। सबने हाथ मुंह धोकर कन्द मूल फल का आहार किया। बीच बीच मे इधर उधर की बातें भी करते थे। राजकुमार जयसिंह ने बताया कि वह अपने साथियो को छोड़कर शिकार खेलते खेलते इस ओर आगये थे और अब उन्हें शीघ्र ही अपने साथियो से मिलना है क्योंकि वह उनकी प्रतीक्षा मे चिन्तित

होंगे। वहीदखां ने पूछा—"अब आपका कहां जाने का विचार है?"

राजकुमार ने कहा—"मैं अब वापस उदयपुर ही जाऊँगा क्योंकि वहां से निकले काफी समय हो गया है। पिताजी हमारी राह देख रहे होंगे। उन से थोड़े समय के लिये ही कह कर चला था किन्तु इसी प्रकार रास्ते में ठहरते ठहरते काफी समय व्यतीत हो गया। अपनी इस यात्रा में मैंने राजस्थान के कई भागो में भ्रमण करके पर्याप्त अनुभव प्राप्त किया है और मुझे विश्वास है कि शायद मेरा यह अनुभव किसी समय अवश्य लाभदायक सिद्ध होगा। मुझे मालूम हुआ है और मैंने स्वयम् भी देखा है कि मुगल लोग राजपूतों को काफी परेशान कर रहे हैं। यहां के निवासी वे घरवार होकर पहाड़ियों में छुप छुप कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी जिन्दगी हर समय खतरे में पड़ी हुई है। यह देखकर मुझे अत्यन्त दुख हुआ है। मैं चाहता हूँ कि मेरा जीवन अपने देश व समाज की सेवा में काम आये। अब आप लोगों का कर्त्तव्य है कि आप सुसंगठित होकर अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठायें और अपने देश को अत्याचारियों के चंगुल से मुक्त करें। मैंने सुना है कि महाराज जसवंतसिंह की मृत्यु होने के बाद जोधपुर पर संकटो की घटायें घिर आई हैं और मुगलों ने मारवाड़ को नष्ट करने का बीड़ा उठा लिया है। जोधपुर की महारानी और राजकुमार की कथायें भी मुझे मालूम हो चुकी हैं और वीर दुर्गादास की स्वामीभक्ति व देश भक्ति के उदाहरण भी मैं सुन चुका हूँ। मुझे विश्वास है कि आप लोग दुर्गादास जैसे सुयोग्य वीर के नेतृत्व में अवश्य ही सफलता प्राप्त कर सकेंगे और यदि आपने अपना संगठन कर लिया तो कोई शक्ति नहीं जो आपको स्वतंत्र होने से रोक सके।"

राजकुमार के ओजस्वी भाषण को सब ध्यान से सुन रहे थे। सब ने संगठित होकर स्वदेश के लिये लड़ने की प्रतिज्ञा की। लालवा और हमीदा भी प्रतिज्ञा करने में पीछे न रहीं। यद्यपि हमीदा और वहीदखां मुगल थे किन्तु मुगलो की वर्तमान नीति की उन्होंने घोर निन्दा की और अत्याचार व अन्य के विरुद्ध राजपूतों की सहायता करने का वचन दिया। हमीदा का परिचय भी उस समय तक सब को प्राप्त हो गया था। नाथूसिंह ने ही लालवा और हमीदा के विषय में पूरा परिचय दे दिया था। राजकुमार ने दोनों कन्याओ की वीरता की सराहना की और उन्हें अधिक उत्साहित किया। दोनों नीचा सिर किये हुये बैठी थीं और राजकुमार की बातों को बड़े ध्यान से सुन रही थीं।

कुछ क्षण बाद राजकुमार ने सब लोगों से विदा ली और यह वचन दिया कि वह उनकी सहायता के लिये सदैव तैयार रहेगा। जिस समय भी चाहे निस्संकोच होकर सहायता का संदेश उसे भिजवा सकते हैं। जब तक राजकुमार आंखों से ओझल न हो गये सब उन्हीं की ओर देखते रहे। उनका ध्यान उस समय भंग हुआ जब उन्होंने अपने बिल्कुल निकट ही बड़ी तेजी से आते हुये एक युवक को देखा। वह इतनी तेजी से चला आरहा था मानों वह बहुत घबड़ाया हुआ है। उसे देखते ही लालवा चिल्लाकर बोली—"भैया, गंभीर !" युवक ने पास आकर हांफते हुये कहा—"भागो ! भागो !! यहां ठहरने का समय नहीं है। मुगल सैनिक तुम्हारी तलाश में इधर ही आरहे हैं। मांडों लुटगया !! महाराज और महारानी......ओफ......" उसका सिर चकराने लगा वह बैठ गया। लालवा यह समाचार सुनकर घबड़ा उठी। महाराज और महारानी का क्या हुआ? यह जानने के लिये वह बेचैन हो गई।

———

पांचवां परिच्छेद

औरंगजेब

दिल्ली की विशाल नगरी अपने पूर्ण यौवन पर थी। अपने जीवन मे उसने कई उतार चढ़ाव देखे थे। कभी वह खून के आंसुओं से रोई थी तो कभी उसने स्वर्ग को लज्जित करने वाली वैभव का भी सुख उपभोग किया था। अब भी उसके जीवन का स्वर्ण काल था। दिल्ली का लाल किला सौंदर्य व वैभव मे अपनी उपमा न रखता था। समस्त संसार में वैसी सम्पन्नता व प्रतिभा कभी देखने मे न आई थी। तत्कालीन इतिहासकारों ने उसकी प्रशंसा करते हुये उसे पृथ्वी का स्वर्ग बतलाया है। फारसी मे इसके विषय में एक शेर भी है जो किले के अन्दर दीवार पर लिखा हुआ था—"अगर फिरदौस बर रूये जमी–नस्त। हमीनस्तो, हमीनस्तो, हमीनस्त"। अर्थात्-"यदि समस्त पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो यही है, यही है, यही है।" यह केवल कवियो की अतिशयोक्ति नही, वास्तविकता है। उस समय का विस्तृत इतिहास पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। मुगल सम्राटों के वैभव को देखकर विदेशी दांतो तले उंगली दबा गये थे और उनकी सम्पन्नता व ऐश्वर्य देखकर सर थामस रो जैसे महान् नीतिज्ञ विदेशी यात्री की आंखें खुल गई थीं। इतिहास–कारों का कहना है कि अन्य मुगल सम्राटो की भांति औरंगजेब सजावट व सुख ऐश्वर्य का प्रेमी न था। यह सत्य है कि वह सादगी पसंद करता था किन्तु फिर भी उसके दरबार व महलों मे वैभव की वर्षा होती थी और अपूर्व सजावट नजर आती थी। जरा जरा सी जगह की सजावट में लाखो रुपये व्यय हो जाते

थे, चाहे वह खर्चा शाही खज़ाने से होता हो या किसी अमीर या सरदार की जेब से।

औरंगजेब क्या था और कैसा था यह इतिहास-प्रेमियों से छुपा नहीं है। जिस नीति का उसके पूर्वज अकबर ने आश्रय लेकर मुगल साम्राज्य की नींव को दृढ़ किया था उसके बाद भी जहांगीर व शाहजहां ने विशेष परिवर्तन न किया था। उसको औरंगजेब ने न अपनाया। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था और हमेशा दीन धर्म की दुहाई दिया करता था। सुन्नी मुसलमानों के अतिरिक्त वह सबको काफिर समझकर घृणा की दृष्टि से देखा करता था। हिन्दू और विशेषकर राजपूत उसके घोर शत्रु थे। वह वीर था और वीरता के ही बल पर शासन करना चाहता था। उसके मन की बात उसकी सन्तान तो क्या उसकी बेगमे भी मालूम नहीं कर सकती थीं। अपने मन के भावो को गुप्त रखने मे वह बड़ा चतुर था और अपने इसी गुण के कारण वह बड़े से बड़े चालाक को भी धोखे में डालने में समर्थ हो जाता था।

उसकी आन्तरिक इच्छा यह थी कि वह समस्त राजपूत वीरो को समाप्त करदे। साम, दाम, दण्ड, भेद से वह उनका विनाश चाहता था। किसी को युद्ध से, किसी को धोखे से, किसी को अन्य किसी उपाय द्वारा समाप्त करने के विचारों में ही लीन रहा करता था। जो राजपूत वीर उसके मित्र थे और उसके दरबार में रहते थे उनसे भी वह मन ही मन में जलता था। जोधपुर नरेश महाराज जसवन्तसिंह को काबुल की कठिन लड़ाई में भेजने का उद्देश्य ही यही था किन्तु सौभाग्यवश अद्वितीय वीर महाराजा विजयी हो गये। विजयोपलक्ष मे सम्राट के इशारे से ही वहीं उन्हें भोज दिया गया और धोखे से जहर देकर उनका अन्त कर दिया गया, महारानी उनके साथ

ही थीं वह वापस दिल्ली बुला ली गईं। रास्ते में उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम "अजीतसिंह" रखा गया। सम्राट ने महा-रानी और नवजात कुमार दोनों को हस्तगत करना चाहा और इसी उद्देश्य से उन्हे शाही बन्दी बना लिया। औरंगजेब का विचार उन्हे समाप्त करने या बलात् मुसलमान बनाने का था। उद्देश्य छुपा न रह सका। वीर राजपूतों ने दुर्गादास के नेतृत्व में महाराणी व कुमार की रक्षा की। एक स्वामीभक्त मुसलमान के हाथों ही कुमार को एक गुप्त स्थान में भेज दिया गया। इस विषय में हम पहले लिख चुके है। औरंगजेब के विचार धूल धूसरित हो गये। इसलिये वह पेचताव खा रहा था। वह दुर्गा-दास व जोधपुर की महाराणी व कुमार का शत्रु बन बैठा और हाथ धोकर उनके पीछे पड़ गया। इनमें से कोई उसके हाथ न आ सका, यद्यपि वह बराबर उनकी तलाश में लगा हुआ था। दुर्गादास की वीरता के आगे उसकी एक न चलती थी।

जिन राजपूतों ने उसकी रक्षा की और राज्य चलाने में सहायता की उन्हीं की जड़ खोदना उसने अपना उद्देश्य बना लिया था। जोधपुर महाराज ने भी उसकी क्या कम सहायता की थी और आमेर नरेश ने भी उसकी क्या कम सेवायें की थीं। आमेर नरेश के साथ भी उसने कौनसा अच्छा व्यवहार किया। उन्हें भी मुगल सम्राट की नीति का शिकार होना पड़ा।

बीकानेर नरेश महाराज श्यामसिंह भी मुगल दरबार में थे किन्तु वह सम्राट के लिये भय का कारण नहीं बन सके क्योंकि बीकानेराधिपति की नीति अपने पूर्वज महाराज पृथ्वीराज के समान थी जो अकबर के दरबार में थे। वह गुप्त रूप से राज-पूतों की सहायता कर दिया करते थे और विशेष संकट की संभावना होने पर पहले ही उन्हें सावधान कर देते थे। मुगल

दरबार में रहकर भी बीकानेर नरेश का हृदय तो राजपूत ही था और उनकी रगों में राजपूती खून जोश मारता था।

मुगल सम्राट औरंगजेब मेवाड़ाधिपति महाराणा राजसिंह से भी बहुत कुढ़ता था। मेवाड़ से मुगलो की शत्रुता नई नहीं थी बल्कि काफी पुराने समय से चली आ रही थी। बप्पारावल के समय से ही सिसौदिया वंश के मेवांड़ी वीरो ने कभी मुगलों के सामने सिर न झुकाया था और वे लोग हमेशा स्वदेश को कलंकित होने से बचाने के लिये मुगलो से लड़कर उनके दांत खट्टे करते रहे थे।

इतिहास प्रेमियों से यह छुपा नहीं है कि औरंगजेब से महाराणा राजसिंह का वैर उनकी महाराणी के कारण भी बढ़ गया था। औरगजेब ने जिस वीरांगना को अपने हरम से लाने की भरपूर चेष्टा की थी और जिसके लिये महाराणा राजसिंह से उसका युद्ध हुआ था वही वीरांगना महाराणा की पत्नी बनी। वह स्वयं वीरांगना थी, वीर पत्नी थी और वीर माता भी। उसके दोनों पुत्र जयसिंह और भीमसिंह प्रसिद्ध वीर थे जिन्होने मुगल सेना को अनेक बार छकाया था। यही कारण था कि औरंगजेब महाराणा राजसिंह से भय खाता था। राजसिंह केवल वीर ही नहीं, राजनीति मे भी कुशल थे। वह औरंगजेब की चालों को खूब समझते थे।

एक दिन—

दिल्ली के किले में सम्राट का शानदार शाही दरबार लगा हुआ था। मुगल सम्राट औरङ्गजेब दुग्धफेन के समान श्वेत वस्त्र पहने हुये मयूरसिंहासन (तख्तेताऊस) पर बैठा हुआ था। अमीर, उमरा, सरदार, राजा, महाराजा सब यथा स्थान बहुत

अदब कायदे से बैठे थे। सम्राट उस समय राजस्थान के ही विषय में बातें कर रहे थे। सम्राट ने कहा—

"हमने सुन लिया है कि हमारी हिन्दू-प्रजा हमारी इस आज्ञा से खुश नहीं है कि जजिया कर लगा दिया जाये। खासकर राजपूताना के राजपूत लोग इस पर बिगड़ रहे हैं। इस आशय का एक पत्र भी हमारे पास महाराणा राजसिंह जी के पास से आचुका है। उस पत्र से यह मालूम होता है कि यदि हमने अपना फरमान न बदला तो वह हमारा विरोध करेंगे। इस सम्बन्ध मे हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि किसी की धमकी से शाही फरमान बदला नही जा सकता। खजाने में इस समय धन की कमी आगई है और उसे पूरा करना होगा और इसलिये यह कर लगाया गया है। हजरत पैगम्बर साहब की आज्ञा से व कुरान शरीफ की रू से हमने यह फरमान जारी किया है। हम दीन की खिलाफत नहीं कर सकते और खिलाफत करने वालों को कठोर दण्ड देंगे।"

बादशाह के इस वक्तव्य का चाटुकार दरबारियों ने समर्थन किया और सम्राट की हां में हां मिलाई। उसके विरूद्ध मुख खोलने का साहस भी किसी में न था। उसके क्रोध और हठीले स्वभाव से सभी परिचित थे। सम्राट से हिन्दू ही अप्रसन्न हों यह बात न थी। उसके स्वभाव व व्यवहार से मुसलमान भी असन्तुष्ट थे। अन्य लोगो की तो बात ही क्या उसके पुत्र ही उससे अप्रसन्न रहते थे किन्तु भय के कारण किसी को कान हिलाने का भी साहस न होता था। महाराज श्यामसिंह का विचार था कि कुछ कहें किन्तु दूसरे ही क्षण उन्होंने सोचा कि इस हठीले से कुछ कहना सुनना व्यर्थ है क्योंकि यह किसी की न सुनेगा और अपने मन की ही करेगा। इसके अतिरिक्त संभव

है कि उसे यह सन्देह हो जाये कि राजपूत राजा हिन्दुओ का व महाराणा का पत्त ले रहा है। यह सोचकर वे शान्त ही रहे।

उसी समय सेनापति दिलेरखां ने दरबार में प्रवेश किया। यथोचित अभिवादन के पश्चात् दिलेरखां ने निवेदन किया—"जहांपनाह ! मुझे समाचार मिले है कि हमारी सेनायें राजपूताना में कई जगह हार चुकी है। वहादुर शमशेरखां को भी दुर्गादास ने मार डाला है और गजब की वात तो यह है कि शमशेरखां की नौजवान हसीन लड़की राजपूतो से जा मिली है। अजमेर से गई हुई एक सेना को भी मेवाड़ियों ने हरा दिया है और उनमे से बहुत से वीर लड़ाई में काम आचुके है......"

दिलेरखां कुछ और कहता किन्तु असह्य होने के कारण औरंगजेब क्रोध से लाल हो गया और बीच में ही बात काट कर बोला—'हार ! हार ! सब जगह हार ! यह मैं क्या सुन रहा हूँ ? क्या मुग़लों की ताकत समाप्त होगई है ? क्या दीन पर मर मिटने वाले आज सुख विलास भोग रहे है ? जिन लोगों ने मुगलों का आतंक सारे ज़हान में फैला दिया था क्या उनकी सन्तान आज कायर हो गई है ? अफसोस ! सद अफसोस ! दिलेरखां और तहव्वुरखां जैसे वहादुर सेना-नायकों के होते हुये भी यह समाचार मेरे कानों में आरहे हैं। क्या बाप दादा की जमाई हुई यह सल्तनत खाक मे मिलना चाहती है ? नहीं यह हरगिज न होगा। मेरे रहते मुग़ल सल्तनत की दीवार की एक ईंट भी नहीं हिल सकती। मैं स्वयम् इसका प्रबन्ध करूंगा और देख लूँगा कि मुग़लों की तलवार के सामने ठहरने की हिम्मत किसमें है ?"

सम्राट औरंगजेब उस समय अपने आपे में न थे। दरबार बरखास्त कर दिया गया। सम्राट हरम की ओर चले गये।

किन्तु उनका कोप विशेष कर जोधपुर महारानी पर था। उस समय उस दिन शायद उनके भाग्य में बुरे समाचार सुनना ही वदा था। वहां जाते ही उन्हें यह समाचार मिला कि, "मथुरा में मन्दिरों और मूर्तियों का खण्डन तो हो रहा था किन्तु कृष्ण की जिस मूर्ति को तोड़ने का कार्य प्रधान था वह न हो सका। इससे पूर्व कि मुगल सेना उस मन्दिर में पहुँचे वह मूर्ति वहां से गायब हो चुकी थी। मेवाड़ के महाराणा के पुत्र कुंवर जयसिंह जी अपनी सेना सहित वहां पहुँचे और उन्होने बड़ी युक्ति से मूर्ति को हस्तगत करके उसकी रक्षा करली और वापस चले गये। मुगल सेना ने उनका पीछा भी किया किन्तु असफल रही।"

यह सुनकर औरंगजेब दांत पीसने लगा। उसका वश चलता तो उस समय वह समस्त राजपूताना प्रदेश को अपना विराट रूप करके अपने मुख में धर लेता और जवाड़ो के बीच दाब कर पीस डालता। वह खून के से घूंट पीता हुआ अपनी परम प्रिय बेगम गुलेनार के महल में चला गया। वह कितना भी क्रोध में लाल होता गुलेनार के समीप पहुँचते ही उसका सारा क्रोध का नशा काफूर हो जाता था और वह दवी बिल्ली के समान अपनी बेगम के पास बैठ जाता था। बात यह थी कि गुलेनार बेगम उसे अधिक प्रिय थी और उसका कहना वह कभी न टालता था। गुलेनार काश्मीरी थी और अपने अद्वितीय सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध थी। जितनी ही वह सुन्दर थी उतनी ही वह तुनक मिजाज भी थी। कभी-कभी सम्राट भी उसके कोपभाजन बन जाते थे और अन्त में विजय बेगम की ही होती थी। वह विलास प्रिय और बड़ी हठीली थी।

सुन्दरी गुलेनार भी जोधपुर के राजपरिवार की शत्रु थी। किसी समय उसे कटु शब्द कह दिये थे बस यही बात उसके

दिल में वैठी हुई थी और उसका वदला लेने का विचार उसके मन में हर समय वना हुआ था। उसने औरंगजेब से स्पष्ट कह दिया था कि किसी भी प्रकार जोधपुर की महारानी उसके सामने उपस्थित होनी चाहिये ताकि वह अपमान का वदला पूरी तरह ले सके। महारानी वीर पत्नी ही नहीं स्वयम् भी वीरांगना थी। वह अपनी रक्षा का उपाय स्वयम् भी करना जानती थी। औरगजेब तो स्वयम् ही जसवन्तसिंह के परिवार को समाप्त करना चाहता था। जसवन्तसिंह ने उसके वादशाह होने से पूर्व भाइयों की लड़ाई में दारा का पक्ष लिया था और उसकी सहायता भी की थी। उसी समय से सम्राट मन ही मन महाराज से द्वेप रखता था किन्तु प्रकट रूप में उनका मित्र वना हुआ था।

गुलेनार ने जव वादशाह से सारी वातें सुनीं तो वह मुसकुराई। उस समय उसकी मुसकुराहट में मधुरता न थी प्रत्युत व्यंगात्मक भाव प्रदर्शित हो रहे थे। वह कहने लगी—"क्या आलमगीर इतनी सी मुसीवत आने पर ही घवरा गये? क्या मुट्ठी भर राजपूतों की शक्ति ने ही विशाल मुगल साम्राज्य के शाहंशाह को भयभीत वना दिया? मुझे विश्वास नहीं होता कि वह लौह-पुरुप जिसकी शक्ति का लोहा समस्त संसार मानता है राजपूतों की सीमित शक्ति को वढ़ता हुआ देखकर विचलित हो उठे, सम्भव है आपकी ओर से कुछ शिथिलता होने से ही उन लोगों ने सिर उठा लिया है लेकिन जिस समय आप स्वयं रणक्षेत्र में जाकर इस ओर विशेप रूप से ध्यान देकर इस कार्य को पूर्ण करने का वीड़ा उठा लेंगे तो जिस प्रकार भास्कर के उदय होते ही तारागण अस्त हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार राजपूत भी आपके तेज के सामने न ठहर सकेंगे।"

गुलेनार ने शाहंशाह को स्वयम् युद्ध क्षेत्र में जाकर राजपूतों से लोहा लेने के लिये खूब प्रोत्साहित किया। औरंगजेब भड़का हुआ था ही अधिक भड़क उठा और पूर्ण रूप से राजपूताने का नाश करने के लिये तैयार हो गया। उसने गुलेनार से कहा—"प्रिय गुलेनार! मैं पहले से ही यह विचार कर चुका हूं कि इस वार मैं स्वयम् ही जाकर राजपूतों को उनकी धृष्टता का मजा चखाऊं। मेरी समझ में नहीं आता कि हमारी फौजें वहां जाकर किस प्रकार युद्ध करती हैं कि जिस समय सुनो पराजय की ही खबर सुनाई देती है। यह मैं मानता हूं कि राजपूत बहादुर कौम है और उससे मुकाबला करना आसान नहीं है फिर भी मैं यह कभी मानने को तैयार नहीं कि मुगल सेना राजपूतो से किसो भी प्रकार वीरता मे कम है। पने साथ काफी सेना लेकर जाऊंगा और खास खास चुने हुये वीरों को ही साथ लूंगा। गुलेनार तुम भी हमारे साथ अवश्य चलना। तुम्हारी इच्छा इस वार अवश्य पूर्ण होगी।"

कुछ देर गुलेनार के महल में ठहर कर सम्राट अपने सेनापतियों से मंत्रणा करने चला गया। दिलेरखां, तहव्वुरखां उसके विश्वास पात्र वीर सेना नायक थे। इन दोनों पर उसे गर्व था और यह भरोसा था कि इनकी अध्यक्षता में सेना सुसंगठित रहेगी और जयश्री अवश्य प्राप्त होगी। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य वीर सेना-नायकों को भी उसने साथ चलने की आज्ञा भिजवा दी।

सेना की तैयारियाँ शीघ्रता से होने लगीं। पैदल सेना घुड़सवार आदि विविध सेनायें अस्त्र-शस्त्रों सहित सजने लगीं। शाहंशाह का पुत्र शहजादा अकबर भी तैयार हुआ। उसे भी युद्ध में चलने का शाही फरमान मिला। अकबर वीर पिता का

वीर पुत्र था किन्तु अपने पिता के समान कट्टर मुसलमान था। वह कभी-कभी राजपूतों का पक्ष ले बैठता था। उसकी यह कमजोरी उसके पिता से छुपी हुई न थी किन्तु वीर होने के नाते उसे साथ ले लिया गया। युद्ध क्षेत्र में वह सेना के साथ होते हुये राजपूतों का पक्ष न ले सकेगा और शाहजादा होने के नाते उसे विजय प्राप्त करने की पूर्ण चेष्टा करनी ही होगी। उस समय के नियम के अनुसार बादशाह के साथ बेगमें भी चलने के लिये तैयार हो गईं। बेगम के साथ राजपरिवार की अन्य स्त्रियाँ भी होती थीं। सेना सजधज कर तैयार होगई और यथा समय अजमेर की ओर रवाना हो गई।

छठा परिच्छेद

अबलाओं की वीरता

दो तीन दिन तक लगातार यात्रा करते करते पांचों अश्वारोही थक गये थे। घने जंगलों मे होते हुये पथरीले कटकमय बीहड़ पथ को मीलों तक पार करना पड़ा। न भूख प्यास की चिन्ता थी न अपने शरीर की सुधि थी। घोड़े की सवारी करते—करते सब के जी ऊब गये। किसी सुरक्षित स्थान की खोज में विश्राम करने के लिये भटकने लगे। कुछ दूर पहाड़ियों को देख कर सब के जी में आया। नाथूसिंह ने कहा—

"बस कुछ दूर और चलो समीप ही पहाड़ियाँ हैं। इससे अधिक उत्तम व सुरक्षित स्थान कहीं न मिलेगा। इन्हीं पहाड़ियों मे खोज करने से किसी और दुर्गादास भी मिल जायेंगे। मेरा विश्वास है कि वह इन पहाड़ियों में ही कहीं होंगे।

"हां इस सम्बन्ध में नाथूसिंह जी की राय अधिक उपयुक्त होगी। ये इस स्थान से अधिक परिचित भी हैं और वीरवर दुर्गादास के विषय में शीघ्र ही पता लगा लेंगे।" वहीदखां ने कहा।

"मेरा तो प्यास से गला सूखा जा रहा है। पहले कुछ विश्राम करके आगे बढ़ना उचित होगा। यह स्थान सुरक्षित ही मालूम होता है और यहां किसी प्रकार का भय भी नहीं दिखाई देता," लालवा ने कहा। उसका मुखकमल सत्यतः कुम्हलाया हुआ नज़र आ रहा था और खुश्की मे उसके होठ सूखे जा रहे थे। यह देखकर यही सब लोग अपने-अपने घोड़ो से उतर गये और विश्राम करने लगे।

लालवा के विकल होने का कारण एक और भी था। चौथे अध्याय के अन्त में पाठकों ने पढ़ा होगा कि एक व्यक्ति ने घब-राते हुये आकर इन लोगों को वहां से भागने का अनुरोध किया था। वह इतनी घबराहट मे था कि मांडों का समाचार भी पूरी तरह न कह सका और उसने केवल 'महाराज और महारानी' शब्द ही उच्चारण किये थे। लालवा यह सुनकर बहुत चिन्तित होगई थी कि युद्ध का परिणाम क्या हुआ होगा और उसके माता पिता का क्या हाल है। उस समय तो ठहरने का समय था ही नहीं रास्ते मे लालवा ने उस व्यक्ति से सारा हाल मालूम किया। उसने बताया कि राजपूत हार गये और इनायतखां ने मांडों पर अपना अधिकार कर लिया। चन्द्रसिंह ने लालवा की खोज में

गढ़ का कोना २ छान मारा किन्तु जव उसे सफलता न मिली तो वह बड़ा झुंझलाया और उसने महाराज व महारानी को कैद कर लिया और उन्हे सौजतगढ़ ले गया। दोनों वहीं वन्दी के रूप में हैं और उनके साथ कठोरता का व्यवहार किया जा रहा है। मानसिंह का कुछ पता नहीं कि वह कहाँ है। कदाचित वह वच गया है और कहीं चला गया है। यह निश्चित है कि वह मारा भी नहीं गया है और कैद भी नहीं हुआ है। यह सव समाचार लालवा को चिन्तित वनाने के लिये कम न थे। माता पिता की दशा उसी के कारण हीन हुई थी। उसे अपने ऊपर क्रोध आता था और कभी-कभी अपने जीवन से घृणा भी होने लगती थी।

लालवा और हमीदा को वहीं विठाकर शेष तीनो व्यक्ति जलपान का प्रवन्ध करने चले। लालवा ने जल पीकर अपनी प्यास तो वुझा ली किन्तु आहार किसी ने भी न किया था। अतः इसका प्रवन्ध करना भी आवश्यक था। लालवा को वैठे-वैठे फिर अपने माता पिता का ध्यान आगया और वह इतनी दुखी हुई कि उसके नैनों से अविरल अश्रु धारा वह चली। हमीदा ने उसे वहुत कुछ धीरज दिलाया और कहा कि उन्हे मुक्त कराने का शीघ्रातिशीघ्र प्रवन्ध किया जायेगा।

हमीदा और लालवा दोनों स्वच्छ वायु सेवन के लिये इधर उधर टहलने लगीं। टहलते टहलते वे एक ओर खुले मैदान में आगई जिसके दोनो ओर पहाड़ियां थीं। शीतल पवन के झोंके से लालवा की दशा मे कुछ परिवर्तन हुआ। दोनो सहेलियां मन्थर मन्द गति से जा रही थीं कि अकस्मात् उन्हें मालूम हुआ कि कोई उनके पीछे-पीछे चला आरहा है। लालवा ने मुड़कर देखा तो वह आश्चर्य से चीख उठी—कौन? चन्द्रसिंह?"

"हां चन्द्रसिंह। तुम्हारा प्रेमी चन्द्रसिंह, तुम्हारी खोज करते करते यहां भी आ पहुँचा है। अब वह तुम्हें अपने साथ लेकर ही जायेगा। खबरदार! चीखने चिल्लाने की कोशिश न करना वरना परिणाम अच्छा न होगा।" यह कहते कहते चन्द्रसिंह ने तलवार निकाल ली।

उस समय दोनों सहेलियां शस्त्रहीन थीं इसलिये सहम गईं किन्तु उन्होंने अपने भावों को प्रकट न होने दिया। लालवा ने कहा—

"चन्द्रसिंह! तुम क्यों मेरे पीछे पड़े हुये हो? इस प्रकार बलपूर्वक तुम मेरा हृदय नहीं जीत सकते। तुमने मेरे माता पिता को कैद किया और उन्हें मेरे ही लिये दुख दर्द दे रहे हो। क्या यह कार्य तुम्हे शोभा देता है?"

चन्द्रसिंह ने निकट आते हुये कहा—"मैं अपना अमूल्य समय नष्ट करने नहीं आया हूँ। मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। तुम्हें अब मेरे साथ चलना ही होगा। यदि तुम्हारी यह सुन्दर सहेली भी तुम्हारे साथ चलना चाहे तो वह चल सकती है।"

उस समय क्रोध तो दोनो को बहुत आरहा था किन्तु परिस्थिति अनुकूल न थी। उनके साथी कन्दमूल लेने गये थे और न जाने वह कहां निकल गये थे कि अभी तक नहीं लौटे यह विचार कर उन्होंने नीति से काम लेना चाहा। हमीदा किंचित मुसकुराती हुई आगे बढ़ी और बोली—"ठाकुर साहब! आप ऐसे कठोर हो रहे हैं कि किसी की सुनते ही नहीं, प्रेमी का हृदय तो इतना कठोर नहीं होना चाहिये। प्रेम कठोरता से नहीं, विनम्रता पूर्वक निभाया जाता है। हम अबलाओ के सामने आप तलवार की धार चमका रहे हैं और प्रेम की आशा कर रहे हैं। हम दोनों ही आपके साथ चलने को तैयार हैं किन्तु इस तरह बलपूर्वक नहीं।"

चन्द्रसिंह उस समय उन सौंदर्यमयी ललनाओं की आकर्षक छटा को निहार कर मुग्ध हो गया। उसने समझा कि हमीदा साथ चलने को तैयार है और वह लालवा को भी अवश्य तैयार कर लेगी अतः इस समय प्रेमभाव दरशाना ही उचित होगा क्योंकि सभव है कि कठोरता दिखाने से बना बनाया काम बिगड़ जाये। इस समय शायद यह अधिक परेशान है और मांडों की पराजय से तथा महाराज व महारानी के बन्दी होने से इस पर काफी प्रभाव पड़ा है। यह सोच कर चन्द्रसिंह ने अपने भाव फौरन वदल दिये और मुस्कुराते हुये बोला—

'यदि आप अपनी इच्छा से ही चलना चाहें तो मैं वल प्रयोग करने के लिये कव तैयार हूँ ? किन्तु मैं अव विलम्ब नहीं कर सकता। आप फौरन ही मेरे साथ आजाइये।" यह कहकर चन्द्रसिंह ने उन दोनों की ओर देखा।

दोनों सहेलियाँ चलने को तैयार होगईं। चन्द्रसिंह विजय के मद में फूला हुआ उनके साथ चलने लगा। कुछ पग आगे वढ़ते ही अवसर ताक कर हमीदा ने चन्द्रसिंह की कमर में एक जोर की लात जमा दी। अकस्मात आघात सहन करके वह खड़ा न रह सका और वहीं गिर पड़ा। उसी समय फुर्ती से लालवा उसकी छाती पर चढ़ बैठी और उसकी गरदन दवोचकर बोली, "पापी ! नीच !........" चन्द्रसिंह भौंचक होकर इधर उधर देखने लगा। यह सब कार्य इतनी शीघ्रता में हुआ कि वह आगे पीछे कुछ भी न देख सका और न कुछ सोच विचार ही सका। उसी समय लालवा ने उसकी तलवार छीन ली और कहा— "कुलद्रोही कुत्ते ! अव अपनी करनी का फल भोग।" यह कहते कहते उसने तलवार से उसका सिर काट लिया। वह अन्तिम समय अपने कर्मों का प्रायश्चित्त भी न कर सका और न क्षमा

याचना ही कर सका। कुछ क्षण में ही कुछ का कुछ दृश्य हो गया। उसी समय एक ओर से आवाज आई—"शाबाश।"

दोनों ने पीछे फिरकर देखा तो हाथ में नङ्गी तलवार लिये दुर्गादास अपने कुछ साथियों सहित आरहे थे। लालवा तो उन्हें न पहचान सकी क्योंकि उसने पहले कभी दुर्गादास को न देखा था किन्तु हमीदा तो जानती ही थी। उसने लालवा से कह दिया कि यही 'क्षत्रिय-कुल-भूषण वीरवर दुर्गादास' हैं। हमीदा और लालवा दोनों ने दुर्गादास को सादर अभिवादन किया और सारा हाल कह सुनाया। उनकी चतुराई और वीरता को सुनकर दुर्गादास बहुत प्रसन्न हुये और उनकी सराहना करने लगे। उसी समय नाथूसिंह भी अपने दोनों साथियों सहित आते दिखाई दिये। दुर्गादास को और चन्द्रसिंह की लाश को वहाँ देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। सब लोग यही समझे कि शायद दुर्गादास ने ही चन्द्रसिंह को मारा है किन्तु जब उन्होंने सारा हाल सुना तो सब बड़े खुश हुये और दोनो लड़कियों की प्रशंसा करने लगे। दुर्गादास ने यह भी बताया कि चन्द्रसिंह वहां अकेला ही नहीं आया था बल्कि अपने साथ कुछ सैनिक भी लाया था। उन्होंने कहा—"शायद आप लोगों को मालूम नही है कि हम पहाड़ियों में घिर गये थे। हमारे चारों तरफ मुगलों ने घेरा डाल दिया था। अपने वीर साथियो की सहायता से हमने उन्हें मार भगाया। पहाड़ियों मे मुगल लोग लड़ते हुये घबरा जाते हैं। हमारे साथी वीर थे पर रसद की कमी थी किंतु परमात्मा की कृपा से हमें सफलता मिल गई और मुग़लों ने पीठ दिखाई। मैं पहाड़ियों से उतर कर मैदान में आ रहा था कि मैंने कुछ व्यक्तियो को इधर आते हुये देखा। राजपूत होते हुये भी मुझे उनके रंग ढंग अच्छे न दिखाई दिये। मैंने उनका चुप चाप पीछा किया और उनकी बातचीत से पता लगा लिया कि

वे लोग 'अपहरण' के लिये आये हैं। मैंने उन्हें रोका तो वे लोग गरजे और अन्त में मैंने उन्हें समाप्त कर दिया। तीन व्यक्ति जो भाग गये उन्हें जसकरण और गंभीरसिंह ने शान्त कर दिया। अब आशा है चन्द्रसिंह का कोई साथी यहाँ न होगा तेजकरण और करणसिंह यही देखने गये है कि कहीं कोई बच तो नहीं गया। सन्तोष की बात है कि एक देश-द्रोही व पापात्मा अपने साथियों सहित मारा गया।"

दुर्गादास ने अपना हाल कहने के पश्चात् लालबा व उसके माता पिता का हाल पूछा। नाथूसिंह ने आरम्भ से अन्त तक सारी कथा कह सुनाई। वहीदखां का परिचय पाकर दुर्गादास को बड़ी प्रसन्नता हुई। महाराज महासिंह व महारानी के कैद होने का समाचार जानकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ और क्रोध भी आया। उन्होंने लालबा को धीरज बंधाते हुये कहा—"बेटी लालबा! विश्वास रक्खो कि हम सब से पहला कार्य तुम्हारे माता-पिता को मुक्त कराने का ही करेंगे। तुम हमारे साथ आनन्द से रहो। यह याद रखना कि यहां महलों के सुख ऐश्वर्य नहीं है और न यहां बाग-बगीचे और दिल बहलाने को सखी सहेलियां ही है। यहां तो पहाड़ियों का वनवासी जीवन व्यतीत करते हुये तलवारो की झंकार का संगीत सुनना पड़ता है। हम प्रणय गीतों की अपेक्षा समर गीतों के रसिक है और हमे वीणा की झनकार की अपेक्षा तलवारो की ध्वनि ही अधिक प्रिय और मोहक प्रतीत होती है। न हमारा कोई घरबार हैं, न ठिकाना है। जहां ठहर जाये वही अपना निवास-स्थान है। हमनें अपनी जन्मभूमि को स्वतन्त्र करने का प्रण किया है और अत्याचार व अन्याय का विरोध करते रहने को प्रतिज्ञा की है। शरणागत की रक्षा करना और अतिथि का सत्कार करना हमारा परम धर्म है। धर्म व जाति विशेष से हमें द्वेष नहीं हमारा विरोध तो

केवल परतंत्रता व अन्याय से है। हमारे साथ रहने वालों को हमारे नियमों का पालन करना होगा चाहे वे कितने ही कष्टकर व कठिन हो।"

लालवा ने ध्यान से सब बातें सुनीं और कहा—"मुझे आपकी सब बातें स्वीकार हैं। मेरे माता-पिता को मुक्त कराने की आप शीघ्रातिशीघ्र चेष्टा करें, मैं आपका उपकार आजन्म नहीं भूलूंगी। यही नहीं प्रत्युत मैं आपके साथ सैनिक वेष में आपके नेतृत्व मे देश की यथायोग्य सेवा करूंगी। शस्त्र ग्रहण करके रण मे लड़ूँगी और वीरता पूर्वक देश के लिये वलिदान होने में अपना सौभाग्य समझूंगी।"

बालिका का ऐसा साहस देखकर दुर्गादास को अतीव प्रसन्नता हुई। वह सबको अपने साथ अपने स्थान पर ले गया। वहां मोहकमसिंह मेड़तिया पहले से ही अपने वीर सैनिको सहित उपस्थित थे और दुर्गादास को युद्ध में सहायता देने के लिये आये थे। कुछ समय बाद ही लालवा का भाई मानसिंह भी अपने काका ठाकुर कल्याणसिंह के सहित लगभग तीनसौ वीरों को लिये हुये वहां आ पहुंचा। लालवा अपने भाई को देखकर बड़ी खुश हुई। भाई-बहिन बड़े प्रेम से मिले। लालवा ने ठाकुर कल्याणसिंह का सादर अभिवादन किया। गंभीरसिंह जो दुर्गादास के साथ ही था मानसिंह से मिला और कुशल क्षेम पूछने लगा। लालवा और गंभीरसिंह एक दूसरे से विशेष परिचित न थे क्योंकि काफी समय बाद भेंट हुई थी। मानसिंह ने पुरानी स्मृति ताज़ा करदी गंभीरसिंह लालवा का चचेरा भाई था किन्तु मांडो जाने का सौभाग्य उसे बहुत कम हुआ था इसलिये वह लालवा को न पहचान सका था।

मारवाड़ ही क्या दूर-दूर के राजा महाराजा सरदार आदि दुर्गादास की सहायता के लिये सदैव तैयार थे वह सब उसके

महान् त्याग व उच्च आदर्श का परिणाम था। यद्यपि वह स्वर्गीय महाराज यशवन्तसिंह का सेनापति ही था किन्तु उसका आदर किसी भी राजा महाराजा से कम न था। देश के सभी वीर पुरुष उसकी वीरता का लोहा मानते थे।

यथा समय सोजितगढ़ पर चढ़ाई करदी गई। दुर्गादास का पुत्र तेजकरण और छोटा भाई जसकरणसिंह भी सेना का संचालन कर रहे थे। सेनानायकों में मुख्य रूपसिंह, गंभीरसिंह, सानसिंह, कल्याणसिंह, मोहकमसिंह मेड़तिया और वहीदखां थे। दुर्गादास अध्यक्ष थे और लालवा व हमीदा सैनिक वेष में उन्हीं के साथ थीं। इतना होने पर भी मुगलो के सामने उनकी सेना की संख्या बहुत कम थी इसलिये रात के समय धावा बोलने का विचार किया गया।

जंगलों और बीहड़ पथरीले मार्ग को पार करते हुये सब लोग सोजितगढ़ की सीमा पर जा पहुँचे। दिन भर तो जंगलो से छुप कर रहे और रात को एक पहर रात्रि व्यतीत होने पर सेना गढ़ के समीप जा पहुँची। कार्य इतना शान्तिपूर्वक हो रहा था कि गढ़ मे किसी को खबर न होने पाई। गंभीरसिंह, सानसिंह, रूपसिंह, और वहीदखां ने यह निश्चय किया कि पहले सिंहद्वार के ऊपर ही आक्रमण किया जाये। सेना को वहीं छोड़कर चारों आगे बढ़े और सिंहद्वार से कुछ दूरी पर ही उन्होने घास से आग लगादी। आग की लपटें उठते ही द्वार रक्षक इधर-उधर दौड़े, बस उसी समय मौका देखकर चारों सिंहद्वार पर टूट पड़े और उसे खोल दिया।

द्वार खुलते ही सेना गढ़ में घुस पड़ी और मारकाट मचने लगी। इनायतखां को जब यह समाचार मालूम हुआ तो वह ...ार्थ उठा किन्तु वह अधिक समय तक न लड़ सका और भय-

भीत होकर भाग गया। गढ़ पर अधिकार प्राप्त करने में अधिक समय न लगा। गंभीरसिंह ने मुगलों का झंडा उतार कर गढ़ पर राजपूती झंडा फहरा दिया। लोगों ने 'भगवान एकलिंग की जय' के नारे लगाये।

लालवा, हमीदा, मानसिंह और गंभीरसिंह चारों उस स्थान पर पहुंचे जहां महाराज महासिंह अपनी महारानी के साथ दुर्भाग्य पर आंसू वहा रहे थे। लालवा की याद मे व्याकुल होकर उनकी दशा वहुत गिर गई थी। उन्हें देखते ही लालवा दौड़कर उनके गले से लिपट गई। माता-पिता के हर्ष व आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह आंखें फाड़-फाड़ कर इधर-उधर देखने लगे। उनके सामने ही मानसिंह और गंभीरसिंह खड़े मुसकरा रहे थे और हमीदा भी माता-पिता व पुत्री का मिलन देख रही थी। उसका हृदय कुछ विचलित हुआ और उसे भी अपने माता पिता की अचानक याद आगई। माता का देहान्त वहुत पहले हो चुका था और पिता युद्ध में मारा गया था। उसकी आंखें सजल हो गईं। वह वहां से चुपचाप खिसक कर एक ओर चली गई ताकि इस हर्ष के अवसर पर उसके सजल नेत्र असंगल की सूचना देते हुये प्रतीत न हों। थोड़ी दूर आगे जाते ही सामने से वीर दुर्गादास अपने कुछ साथियों सहित आते हुये दिखाई दिये। हमीदा ने अपने नेत्र झटपट पोंछ लिये किन्तु दुर्गादास का दृष्टि उस पर पड़ ही गई। दुर्गादास ने पूछा—"क्या बात है हमीदा? इस हर्ष के अवसर पर तुम्हारे मुख पर विषाद की घटायें क्यो छा रही हैं? क्या मैं यह विश्वास करूं कि मुगलों की इस पराजय से तुम्हें कुछ दुःख हुआ है?"

हमीदा दुर्गादास के अन्तिम वाक्य को सुनकर चौंक पड़ी। उसे अनुमान होने लगा कि उसकी इस दशा से लोगों को उस

पर सन्देह होने लगा है। उसे दुःख भी हुआ और पश्चाताप भी। उसका हृदय रो उठा किन्तु वह सम्हली और उसी क्षण कहने लगी—"क्या सत्य ही आपको मुझ पर सन्देह होने लगा है? क्या मेरी यह दशा ही संदेह का प्रतीक है? ऐसा विश्वास-घात करने की अपेक्षा मैं अपना अन्त कर लेना अधिक उत्तम समझती हूँ। मैंने आपको पिता के रूप मे समझा है और आगे भी उसी रूप में समझती रहूँगी।"

दुर्गादास ने कहा—"हमीदा! ऐसी दशा में सन्देह करना अस्वाभाविक भी नहीं है। किन्तु मैं इतना मूर्ख भी नहीं हूँ कि सन्देह के आधार पर ही किसी बात को निश्चय मान लूं। यदि तुम्हें संकोच न हो तो अपनी वेदना का कारण बताओ। यदि तुम्हारा किसी ने अपमान किया है तो अवश्य इस विषय मे कठोर कार्यवाही की जायेगी। मै यह कदापि सहन नहीं कर सकता कि मेरी सेना मे नारी जाति का अपमान करने का कोई साहस कर सके या किसी भी अन्य उपाय से अनुशासन की अवहेलना करे।"

हमीदा ने कहा—इसका मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपकी अध्यक्षता में हमे किसी प्रकार का दुःख नही हो सकता। आप कुछ भी विचार न करें, मेरी वेदना कोई विशेष न थी। वह केवल हवा के एक झोंके के समान थी।"

दुर्गादास ने कहा—"तुम कुछ छुपा रही हो। यह तुम्हे उचित नहीं।"

हमीदा ने सिर नीचा कर लिया और घुटने टेक कर दुर्गादास के सामने बैठ गई। वह कहने लगी—"नहीं, मैं आपसे कुछ छिपाना नहीं चाहती। बहन लालवा को अपने माता पिता से मिलते देखकर मुझे भी अपने माता-पिता की याद आगई थी।"

हमीदा अब भी सिर नीचा किये हुये थी। उसकी आंखें फिर सजल हो आई थीं और उसका स्वर कांप रहा था।

दुर्गादास ने कहा—"ओह! यह बात है! यह तो स्वाभाविक ही है किन्तु तुम्हें इस अभाव का अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है।" दुर्गादास ने आगे बढ़कर हमीदा को उठा लिया। दुर्गादास का पितृवत स्नेह पाकर हमीदा निहाल हो गई और उसके नेत्रों से वेदना के नहीं, कृतज्ञता और हर्ष के आंसू निकल पड़े। दुर्गादास ने स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरा और आशीर्वाद दिया।

उसी समय वहां महाराज महासिंह भी महारानी तेजवा व लालवा के सहित आ पहुँचे। उनके साथ मानसिंह व गंभीरसिंह भी थे। दुर्गादास को देखते ही महाराज महासिंह स्नेहावेश में उनके गले से लिपट गये। उनके मुख से कोई शब्द नहीं निकल रहा था। दुर्गादास ने कहा—"महासिंह जी! मुझे दुःख है कि दुष्ट चन्द्रसिंह के कारण आपको कष्ट भोगना पड़ा किन्तु उसे अपने किये का फल मिल गया। वीर कन्या लालवा और हमीदा ने अपने अपमान का उससे यथोचित बदला ले लिया। अब आप गढ़ सांड़ा के शासक ही नहीं हैं बल्कि इस समय सोजितगढ़ भी आपके ही अधिकार में है।"

महासिंह ने कहा—"यह आप क्या कह रहे हैं दुर्गादासजी? सोजितगढ़ को आपने विजय किया है। वह आपके ही अधिकार में है और रहेगा।"

दुर्गादास ने हंसते हुये कहा—"महासिंह जी। मैं राज्य लेकर क्या करूंगा? मैं तो पहाड़ियों में रहने वाला वनवासी जीव हूँ। मैं देश की स्वतन्त्रता के लिये इस समय जो युद्ध कर रहा हूँ अथवा जो प्रण मैंने किया है वह इसलिये नहीं कि राज्यसुख

भोगूँ । मैं सत्य कहता हूँ कि इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है। जो कुछ मैं कह रहा हूँ यह अपना कर्त्तव्य समझकर कर रहा हूँ और आजन्म वही करता रहूँगा। राज्य के लोभ में मैं नहीं पड़ना चाहता।

दुर्गादास का अपूर्व त्याग व निस्वार्थ सेवा-भाव देखकर सब चकित रह गये। महासिंह ने कहा—"धन्य। धन्य! दुर्गादास! आपके जैसे सपूत उत्पन्न करके मारवाड़ प्रदेश भी कृतार्थ हो गया है। आपके सामने हम लोगों का आदर्श कुछ भी नहीं है।

कुछ देर तक बातें होने के पश्चात् दुर्गादास ने थके हुये वीरों को विश्राम करने का आदेश दिया। रात्रि कुछ शेष थी। सब लोग विश्राम करने चले गये। सुबह होते ही सोजितगढ़ पर राजपूती झंडा फहराते देखकर आस पास के गांव के लोगों ने बड़ा आश्चर्य किया। रात्रि का सारा हाल सुनकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। यह समाचार दूर दूर तक फैल गया। यह विजय अत्यन्त महत्वपूर्ण विजय थी। सब लोग हर्ष से नाचने गाने लगे। घर घर मंगल गीत होने लगे। दुर्गादास की वीरता का गुणगान करते-करते लोग न थकते थे। लोगों में नया जीवन आगया, नया उत्साह उत्पन्न हो गया, और कायरों में भी वीरता का संचार होने लगा।

दुर्गादास का तो प्रधान लक्ष्य एक ही था और वह यह कि मारवाड़ को स्वतन्त्र कराना और जोधपुर राज्य से मुगल शासन का अन्त करना। जोधपुर पर चढ़ाई करने का संकल्प करते हुये दुर्गादास ने सब लोगों को उत्साहित किया और जननी जन्म-भूमि के लिये अपने प्राणों का बलिदान करने के लिये तैयार रहने को कहा। उत्साह की लहर चारों ओर दौड़ गई और सबने युद्ध में तन मन धन से पूर्ण सहयोग देने का वचन दिया।

महारानी तेजवा की इच्छा कुछ समय लिये अपने पीहर बालीगढ़ जाने की थी। उसके भाई पृथ्वीसिंह ने भी कई बार उससे इस विषय में अनुरोध किया था। महारानी के साथ ही महाराज महासिंह ने भी वहां जाने की इच्छा प्रकट की, यद्यपि मानसिंह और गम्भीरसिंह की अनुमति इसके प्रतिकूल थी। उनकी प्रबल इच्छा देखकर दुर्गादास ने महाराज महासिंह, महारानी तेजवा और लालवा को बालीगढ़ पहुँचने का प्रबन्ध कर दिया। मानसिंह और गंभीरसिंह उन्हें पहुँचाने चले गये और वीरवर रूपासिंह उदावत सोजितगढ़ की रक्षा व प्रबन्ध करने के लिये वही रहे।

सातवां परिच्छेद

मेवाड़ पर चढ़ाई

राजस्थान पर आक्रमण करने के लिये मुगल सेना ने अजमेर मे पड़ाव डाल दिया। यही स्थान अधिक उपयुक्त था जहां से राजस्थान के सभी प्रान्तो के समाचार सरलता से प्राप्त हो सकते थे। मुगलो की कोप-दृष्टि मारवाड़ और मेवाड़ पर ही थी और यह दोनों स्थान अजमेर से निकट थे। सम्राट औरंगजेब ने मुगल सेना को तीन भागों में विभाजित किया। अपने पुत्र अकबर को सेनापति दिलेरखां के साथ ५०,००० (पचास हजार) सेना के लेकर उदयपुर की ओर भेजा। सम्राट जानता था कि अकबर वीर होते हुये भी विलासी है इसलिये

उसने दिलेरखां जैसे वीर सेनानी को उसके साथ भेजा था। दूसरी सेना तहव्वुरखां व मोहम्मदखां नामक सेना नायकों की अध्यक्षता मे मारवाड़ की ओर भेज दी। तीसरी सेना अपने साथ रक्खी और अपने दूसरे पुत्र आजम के साथ 'दोबारी' की ओर चल पड़ा। उसका तीसरा पुत्र मोअज्जम उस समय दक्षिण में था और कामबख्श भी उसके साथ ही रहा करता था।

राणा राजसिंह ने वीर दुर्गादास को सहायतार्थ बुलवा लिया था क्योंकि वह उस वीर की युद्ध-नीति से परिचित थे। मारवाड़ की महारानी भी उस समय राणा राजसिंह की ही संरक्षकता में उन्हीं के पास थी। वीर दुर्गादास का तो सारा समय ही युद्ध में व्यतीत होता था और कदाचित ही किसी समय वह शान्त होकर विश्राम करते हों। विश्राम करना तो उनके भाग्य मे लिखा ही नहीं था क्योंकि वह स्वयं ही युद्ध में अनुरक्त रहा करते थे।

दुर्गादास के उदयपुर आते ही यह विचार हुआ कि प्रधान सेनापति किसको बनाया जाये और किस प्रकार मुगलों का सामना किया जाये। सबकी राय से वीर दुर्गादास को-ही सम्मिलित सेना का प्रधान सेनापति पद देकर सम्मानित किया गया। वीरों की यह सलाह हुई कि सन्मुख युद्ध करके मुगल सेना पर आक्रमण किया जाये। दुर्गादास को यह बात पसन्द न आई। वह कहने लगे—"हम इस प्रकार खुले मैदान में मुगलों की विशाल सेना का सामना करके भयंकर भूल करेंगे। मुगलों ने जिस प्रकार सेना का संगठन व प्रबन्ध किया है उसके सारे समाचार मुझे अपने गुप्तचर से विदित हो चुके हैं। मेरी राय मे मुगलों को राह मे न रोक कर आगे आने दिया जाये और अपने कौशल से उन्हें तंग पहाड़ी दर्रे में आने के लिये विवश किया

जाये। तंग पहाड़ी मार्ग में शत्रु सेना की शृंखला टूट जावेगी और हमारे लिये वहां मोर्चे बन्दी करना कठिन न होगा। हम लोग पहाड़ी मार्गों से जितने परिचित हैं उतने मुगल नहीं है। उनकी तोपें भी पहाड़ों में विशेष लाभदायक सिद्ध न हो सकेंगी।' सबने यही राय पसन्द की।

उसी समय महाराणा के दोनो पुत्र कुमार भीमसिंह व जयसिंह भी आ पहुंचे। कुमार भीमसिंह का महाराणा से झगड़ा हो चुका था और वह मेवाड़ छोड़कर चले गये थे किन्तु मेवाड़ पर मुगलों का आक्रमण सुनकर वह शान्त न रह सके। वह दृढ़ प्रतिज्ञ होने के साथ ही अपूर्व त्यागी और देश भक्त भी थे। महाराणा अपने कृत्य पर स्वयम् लज्जित थे किन्तु अब क्या हो सकता था। भीमसिंह की प्रतिज्ञा को तोड़ना सरल न था। वह राज्य-लाभ से सर्वथा विमुख हो चुके थे। महाराणा ने भीमसिंह को आते देखकर उनका बड़े प्रेम से स्वागत किया। भीमसिंह ने भी आदर व श्रद्धा प्रकट करते हुये युद्ध में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की। महाराणा ने सहर्ष आज्ञा प्रदान की और दुर्गादास से कहा—"वीर सेनानी! मेरे यह दोनो पुत्र भी तुम्हारी अध्यक्षता में युद्ध करेंगे, मैं इन्हें तुमको सौंपता हूँ।"

दुर्गादास ने सम्मान प्रदर्शित करते हुये कहा—"महाराणा! यह मेरे लिये गौरव व सम्मान का विषय है। मेरे प्राण रहते इन पर आंच न आयेगी।" यह कह कर दुर्गादास युद्ध का प्रबंध करने के लिये वहां से चले गये।

दुर्गादास ने युद्ध का प्रबन्ध बड़ी कुशलता से किया। स्वयम् सम्राट औरंगजेब से युद्ध करने गये और शहजादा अकबर से युद्ध करने के लिये जयसिंह को भेजा। मुगल सेना मेवाड़ की ओर बादलों के समान उमड़ती हुई बढ़ी आरही थी। राजपूतों

ने मुगलों को नहीं रोका और बढ़ने दिया। वे लोग मेवाड़ के पहाड़ी रास्तों मे आ पहुँचे और अन्त में दुर्गादास की नीति के अनुसार राजपूतों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। शत्रु पहाड़ियों में फंस गये। युद्ध आरम्भ हो गया। मुगल पहाड़ों में लड़ते-लड़ते घबड़ा गये। नाकेबन्दी हो जाने से हर प्रकार की सहायता बन्द हो गई और उन्हें पराजित होना पड़ा। कुमार जयसिंह ने शहजादा अकबर को बन्दी बना लिया किन्तु महाराणा ने इसे छोड़कर अपनी उदारता प्रदर्शित की। दुर्गादास ने भी सम्राट की सेना को बुरी तरह पराजित किया। स्वयम् सम्राट राजपूतो का युद्ध कौशल देखकर चकित हो गये। आजम की अध्यक्षता मे मुगल सेना के पैर उखड गये। राजपूतों ने लूट मार शुरू करदी और सम्राट की सर्वप्रिय बेगम गुलेनार को भी कैद कर लिया। कैदी बेगम के साथ अशिष्टता का व्यवहार नहीं किया गया और उसे आदर से जोधपुर की महाराणी के समक्ष उपस्थित किया गया। राणा राजसिंह ने भी यह समाचार सुना। उन्हें अपनी सेना की विजय पर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। दुर्गादास को आदेश दिया कि बेगम को आंदर सहित वापस भेज दिया जाये। स्वयम् दुर्गादास भी स्त्रियों को बन्दी बनाने के पक्ष में न थे किन्तु महाराणी जोधपुर के आदेश से उन्हे ऐसा करना पड़ा था।

जोधपुर की महारानी सम्राट की बेगम को अपने सामने वन्दी के रूप में देखना चाहती थी यद्यपि उन्होंने भी उसका कोई अपमान न किया। महारानी ने बेगम से कहा—"बेगम साहिबा! आपकी आशाओं पर तुषारपात हो गया। आप मुझे व मेरे पुत्र को कैद करके हत्या के पातक से बच गई। अब आप हमारे अधिकार मे हैं। यदि हम चाहे तो आपकी हत्या कर सकते हैं तथा अपने अपमान का बदला भी ले सकते है किन्तु

राजपूतों का आदर्श ऐसा नहीं है। राजपूत अबलाओं व असहाय जनों की रक्षा करते हैं, हत्या नहीं। आपको अभी मुक्त करके बादशाह के पास पहुंचा दिया जावेगा।" बेगम खून के से घूंट पीकर यह शब्द सुन कर मौन हो गई। वह समझती थी कि उस समय उसका जीवन इन्हीं लोगों की दया पर निर्भर है किन्तु वह मन ही मन राजपूतों की उदारता देख कर उनकी प्रशंसा किये बिना भी न रह सकी। वह उनकी विशाल—हृदयता पर अवाक रह गई। जब उसने मुग़लों के और विशेषतया अपने पति औरंगजेब के व्यवहार की इन लोगों के व्यवहार से तुलना की तो उसने जमीन—आस्मान का अन्तर पाया।

महाराणा राजसिंह की इच्छानुसार जोधपुर की महाराणी के आदेश से दुर्गादास ने बेगम गुलनार को सम्राट के पास पहुँचा दिया। इस पराजय से मुग़लों की शक्ति को बहुत धक्का लगा। इस युद्ध में उनकी काफी हानि हुई और उनके हजारों वीर मारे गये। दुर्गादास ने मेवाड़ से मुग़लों को निकाल कर ही दम न लिया प्रत्युत झालावाड़ पर आक्रमण करके उसे भी जीत लिया। राजपूतों की सहायता पाकर राजस्थान की जनता में उत्साह भर गया था और सभी जाति के लोग मरने-मारने को तैयार हो रहे थे। मालवा प्रदेश से भी दयालशाह ने मुग़लों की फौज को निकाल दिया था और उसने यवनों पर उसी प्रकार अत्याचार किये जिस प्रकार उन दिनों हिन्दुओं पर होते थे। औरंगजेब ने हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थ आग में जलवा दिये थे और मन्दिर तहस-नहस करके देव मूर्तियों को मस्जिदों की सीढ़ियों पर लगा दिया था तथा हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाने से भी विशेष उत्साह प्रदर्शित किया था। वह जमाना ऐसा था जब कि हिन्दुओं का जीवन पूर्णतया असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया था। हिन्दुओं के प्रति इस विरोधी नीति

से ही उसके विविध शत्रु उत्पन्न हो गये थे। दक्षिण में मराठे और राजस्थान में राजपूत उसकी नाक में नकेल डाले हुये थे। पत्थर का जवाब पत्थर से देने में भी कई शासक न चूके। शम्भाजी के पुत्र महाराज शिवाजी मुगलो के कट्टर शत्रु बने हुये थे और उन्होने भी यवनो के प्रति काफी दुर्व्यवहार किया और मुगलों के अत्याचार का बदला लिया। राजपूत राजाओं ने ऐसा करना उचित न समझा। शिवाजी महाराज के समान ही महाराणा राजसिंह व वीर दुर्गादास के चरित्र अत्यन्त उज्जवल व महान् थे और यही कारण था कि कई मुगल सरदार भी औरंगजेब की कठोर व घृणित नीति से दुखी होकर अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध क्षत्रियों से मिल गये थे।

चोट खाई हुई नागिन के समान बल खाती हुई गुलेनार सम्राट औरंगजेब के पास गई और उसने व्यंग बाण छोडते हुये काफी लज्जित किया। वह उस समय तक शान्त न हुई जब तक उसने यह प्रण न करा लिया कि मारवाड़ राज्य को धूल धूसरित करके वह शीघ्र से शीघ्र ही दुर्गादास को बन्दी रूप में उसके सम्मुख लाकर उपस्थित करेगा। केवल इतना ही नहीं गर्वीली महारानी को भी उसने अपनी बांदी बनाने की इच्छा प्रकट की और सम्राट को अपनी प्यारी बेगम की इस अभिलाषा की पूर्ति के लिये भी महारानी को कैद करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ी। सम्राट महारानी व उसके पुत्र को कैद करने की चिन्ता में तो बहुत समय से ही था और उसकी यह चिन्ता अभी दूर भी न हुई थी इसलिये उसकी यह प्रतिज्ञा कोई नवीनता लिये हुये नहीं थी।

औरंगजेब को उसके कुछ निष्पक्ष मुगल सरदारों ने राजपूतों की उदारता व महानता का उदाहरण देते हुये बहुत समझाया

कि हिन्दुओं से वैर करना उचित नहीं है। दिलेरखां नामक वीर सेनापति ने यहां तक कहा कि यदि सम्राट की यही नीति रही तो मुगल साम्राज्य का पतन होने में विलम्ब नहीं है। परन्तु जिस प्रकार रोगी को औषधि सदैव कड़वी लगती है उसी प्रकार औरंगजेब को अपने ही हित की बात अरुचिकर प्रतीत होती थी और वह हिन्दुओं के पक्ष में एक शब्द भी सुनना पसन्द नहीं करता था। मेवाड़ में बुरी तरह पराजित होने पर भी वह निराश नहीं हुआ था। उसने मोअज्जम को दक्षिण से बुला लिया और फिर दुबारा राजस्थान के मारवाड़ प्रदेश पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा। अब उसका सारा कोप वीर दुर्गादास पर था। उसने राजस्थान भर के मुगल सरदारों को यह आदेश दे दिया था कि छल-बल या किसी भी प्रकार से दुर्गादास को कैद कर लिया जाये। जो वीर मुगल ऐसा करेगा उसे पारितोषिक स्वरूप काफी धन दिया जायेगा, साथ ही एक प्रान्त भी उसे मिलेगा।

औरंगजेब को उस समय स्वर्गीय महाराज जसवन्तसिंह की सहसा याद आगई। जिस सेना के अध्यक्ष होकर वह रणक्षेत्र में गये वहीं विजय प्राप्त की और मुगल सम्राट के यश को बढ़ाया। काबुल में पठानों के विद्रोह को दबाना महाराज जसवन्तसिंह जी जैसे अद्वितीय योद्धा का ही काम था। अफगानिस्तान के पहाड़ी प्रदेश में शूरवीर पठानों से लोहा लेना साधारण सेना नायकों का काम न था। मुगल सम्राट अकबर के समय में भी अम्बर नरेश महाराज मानसिंहजी ने ही अपनी वीरता की धाक पठानों पर जमाई थी और उन्हें सम्राट की अधीनता स्वीकार करने के लिये विवश किया था। अब सम्राट को पश्चाताप होता था कि क्यों उसने जसवन्तसिंह जैसे वीर सहायक को छल कपट की चक्की में पीस डाला किन्तु फिर भी उसकी

आंखें न खुल सकीं। यदि वह कुछ सोचता समझता और अपने निष्पक्ष वीरों की सलाह मान कर संधि करता तो राणा राजसिंह व वीरवर दुर्गादास से मित्रता के सम्बन्ध स्थापित कर सकता था। जजिया कर लगाने से राजपूत ही नहीं मराठे भी बिगड़ खड़े हुये थे और भारतवर्ष में हर जगह विद्रोह की आग भड़क उठी थी। सब कुछ जानते हुये भी औरंगजेब अन्धा बना हुआ था। "विनाश काले विपरीत बुद्धि" इसी को कहते है।

गुलेनार के हृदय में भी नाना प्रकार के विचार उठते थे। उसका नारी हृदय विचलित हो उठा था। उसके हृदय में राजपूत जाति के प्रति कुछ श्रद्धा उत्पन्न होने लग गई थी। उनके उज्ज्वल आदर्श ने उस पर अवश्य अपना प्रभाव डाल दिया था। इतना होने पर भी उसके कुटिल भावों ने उसके नवीन विचारों पर विजय पाई और वह अपने पति के सामने ही कट्टर बन गई। वह भारतवर्ष के एक मात्र अधीश्वर सम्राट औरंगजेब की पत्नी होकर जिसकी वक्र दृष्टि से बड़े-बड़े राजा महाराजा व नवाब कांप उठते हैं एक साधारण राजपूत सरदार के हाथों कैद होकर जोधपुर जैसे छोटे से राज्य की महारानी के समक्ष वन्दी के रूप में उपस्थित हो और वह महारानी गर्व सहित उसे क्षमा प्रदान करे! यह उसके लिये महान् अपमान का विषय है और इसके अतिरिक्त विशाल मुगल साम्राज्य के लिये भी लज्जा की बात है।

दुर्गादास मारवाड़ के युद्ध की तैयारी के लिये चले गये थे। महाराणा राजसिंह ने अपने पुत्रों को दुर्गादास की सहायता के लिये एक विशाल सेना सहित भेज दिया था। महाराजा जसवन्तसिंह के समय में मारवाड़ की सेना पूर्णरूप से सुसंगठित थी

और लगभग एक लाख सैनिक सदैव तैयार रहते थे किन्तु उनकी मृत्यु के बाद सारी सेना तितर बितर हो गई। दुर्गादास सबको पुनः सगठित करना चाहते थे किन्तु उन्हें न तो इतना अवकाश ही मिलता था और न ऐसे साधन ही उपलब्ध होते थे जिनके द्वारा वह कार्य सम्पन्न हो सके। जितना उनसे व उनके साथियों से हो सकता था करते थे परन्तु अधिकांश समय युद्ध में व्यतीत होने के कारण सगठित कार्य पूरा न हो पाता था। वह दशा देखकर जोधपुर की महारानी ने संगठन कार्य अपने हाथ में लेने का विचार किया। वह स्वयं वीरांगना थीं और शत्रुओं से अपने पति की हत्या का बदला लेने की व देश को स्वतन्त्र कराने की उनको धुन लगी हुई थी।

मेवाड़ प्रदेश को छोड़कर वह मारवाड़ के गांव-गांव में जाकर जनता को शत्रुओं के विरुद्ध उत्साहित करने लगीं। उनकी वाणी में ओज था, उनके हृदय मे आग जल रही थी। उनका एक-एक शब्द अग्निबाण के समान विद्रोह की आग भड़काता हुआ जनता को उत्साहित करता था। जिन लोगो ने हताश होकर अपनी तलवारें रख दी थीं अथवा जिन्होंने कभी शस्त्र ग्रहण भी न किया था वे लोग भी जोश में भरकर मरने मारने को तैयार हो गये। महाराणी उस समय साक्षात् दानव-दलनी चण्डिका का रूप धारण किये हुए थीं। सदा महलों में सुखपूर्वक निवास करने करने वाली एक विशाल राज्य की अधीश्वरी उस समय घोड़े पर सवार होकर भूख-प्यास सुख-दुख की चिन्ता न करते हुये पथरीली कटकमय भूमि पर सुनसान भयानक जङ्गलों व पहाड़ियों को पार करते हुये उत्तेजना की बिजली भरी हुई वाणी से ठंडे पत्थरों को गर्म बना रही थीं। उनके ओजस्वी वाक्य जड़ को चेतन बना रहे थे और कायरों को भी जोश से उन्मत्त कर देते थे। महाराणी के नेत्रों में उस समय दिव्य ज्योति

चमक रही थी, उनके उन्नत ललाट पर अपूर्व गर्व की झलक व उनके मुख मंडल पर क्षत्रियोचित तेज की आभा दमक रही थी। वीरांगना का वेष था, सिर खुला हुआ था, घने केश पीठ पर बिखरे हुये थे। उन्हें जो देखता था वही श्रद्धा से अपना मस्तक झुका लेता था। ऐसा विदित होता था, मानों स्वर्गीय प्रेरणा से प्रेरित होकर साक्षात् जननी जन्मभूमि देवी का रूप धारण कर के अपने पुत्रों को क्रान्ति संदेश दे रही हैं।

महाराणी के साथ कुछ अन्य स्त्रियां भी थीं जिनमें लालबा और हमीदा भी सम्मिलित थीं। यह दोनों बालिकायें महाराणी की अंगरक्षक के रूप में सशस्त्र उनके साथ चल रही थीं। वे महिलायें उस समय यह प्रकट कर रही थीं कि अबलायें भी स्वतन्त्रता के संग्राम मे क्या कुछ नहीं कर सकतीं। वे कमनीय कोमलांगी महिलायें जो अपने रूप, यौवन व सौन्दर्य की मादक मदिरा से रसिक जनों को उन्मत्त बना देती हैं एवं अपने वीणा विनिन्दित स्वरों की झनकार से जितेन्द्रिय पुरुषों के भी हृदय की तन्त्रियां झंकृत करने मे समर्थ होती है तथा जिनकी मृदु मन्द मुस्कान के बल पर समस्त विश्व नाच उठता है, वही महिलायें समय पड़ने पर अपनी ओजस्वी वाणी से सागर मे तूफान पैदा कर कर सकती है, बिजली की कड़क से पर्वतो, कन्दराओं को प्रतिध्वनित कर देती हैं तथा अपनी कराल वक्र दृष्टि से दिशाओं को भी कम्पित कर सकती हैं।

उस समय मुगलों की विशाल सेना का सामना करने के लिये राजपूतों के पास केवल दस हजार सेना थी और वह स्वतंत्रता संग्राम मे विजय पाने के लिये सर्वथा अपर्याप्त थी। वीर दुर्गादास की सहायता करने के लिये राजस्थान के विविध राजपूत सरदार तैयार होने लगे। महारानी के संगठन कार्य से प्रभावित होकर सोते हुए सिंह जाग उठे और प्रमाद में पड़े हुए

नाग भी फन निकालकर फुफकारने लगे। उस समय साम्प्रदायिकता का प्रश्न वहां न था और न जातिभेद का ही लोगों में विचार था। जनता में क्रांन्ति के भाव फैले हुये थे और देश को स्वतन्त्र करने की भावनायें सबके हृदय में जागृत हो रही थीं।

उधर दुर्गादास भी शांत न थे। वह भी राठौर वीरों को उकसा कर स्वतन्त्रता के युद्ध में कूदने को उत्साहित कर रहे थे। युद्ध के लिये विविध प्रकार के साधन जुटाना भी आवश्यक था क्योंकि केवल सैन्य दल का ही अभाव न था। धन, शस्त्र आदि एकत्र करना भी सैन्य संगठन के लिये अनिवार्य था। महाराणा राजसिंह से उन्हें बहुत सहयोग प्राप्त हुआ किन्तु वह पर्याप्त न था।

दुर्गादास के सामने एक समस्या ही न थी। सम्राट की सेना से युद्ध करने की तैयारी के अतिरिक्त मारवाड़ के आन्तरिक कलह को भी मिटाना था। मारवाड़ के विभिन्न भागों मे मुगल सरदारो ने उत्पात मचा रक्खा था और वे राजपूतो को शान्ति से बैठने न देते थे। संभवतया उनकी यह नीति थी कि मुगल सेनाओ से लड़-भिड़कर राजपूतों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाये और वे कभी संगठित न हो सकें। इन्हीं झगड़ो में दुर्गादास अपने परिवार को भी नष्ट होते हुये देख चुके थे। उनकी वृद्धा माता भी मारी गई। उनका घर ही नही बल्कि उनका सारा गॉव ही आततायियों ने जलाकर खाक कर दिया। एक दिन जिस कल्याणगढ़ की सारे मारवाड़ मे प्रतिष्ठा थी वही उजाड़ होगया था और श्मशान के समान दिखाई देता था। मुगलों ने उनके कारण उनके घर वालों से ही नही उनके ससुराल वालो से भी भयंकर बदला लिया। उनके श्वसुर निर्दयता पूर्वक वध कर दिये गये और उनका सारा घर भी तबाह कर दिया गया। वीर दुर्गादास ने सब कुछ सहन किया और स्वाधीनता के विकट

संग्राम में सबकी आहुति देकर भी अपने हृदय को विचलित न होने दिया। वह अपने उद्देश्य को लिये हुये आगे बढ़ रहे थे। उनका अन्तिम लक्ष्य मारवाड़ को स्वतन्त्र कराकर कुमार अजीत सिंह को जोधपुर के राजसिंहासन पर बिठाना और इसी के लिये उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग किया था। वह महाराणा प्रताप के समान दृढ़ व्रती व देशभक्त थे तथा छत्रपति महाराज शिवाजी की भाँति आदर्श चरित्रवान व युद्धकला मे प्रवीण थे। वे आजन्म सत्य व न्याय का ही निर्भीकतापूर्वक पक्ष लेते रहे।

आठवां परिच्छेद

लालवा पुनः बन्दी

सोजितगढ़ के युद्धक्षेत्र से भयभीत होकर इनायतखां अपने प्राणो की रक्षार्थ इधर-उधर भागने लगा। वह अब नये षड्यन्त्र रचने की चिन्ता में था। मांडो गढ़ व सोजितगढ़ दोनों ही उसके हाथ से निकल गये और दोनों पर ही राजपूतों ने अपना अधिकार कर लिया। उसने मुगल सरदारो को उभारना शुरू किया और दुर्गादास के विरुद्ध खूब बढ़ा-चढ़ा कर झूंठी सच्ची बातें बनाई और उन्हें खूब उत्तेजित किया। चन्द्रसिंह की मृत्यु का समाचार उसे मिल गया था। उसे चन्द्रसिंह के मरने का दुःख केवल इसलिये हुआ कि वह ऐसे समय में उसकी पूर्ण सहायता करता। चन्द्रसिंह के कारण उसे राजपूतों का भी कुछ सहयोग प्राप्त हो

जाता था और वह इस प्रकार राजपूतों को धोखा देकर अपना उल्लू सीधा करने में समर्थ हो जाता था।

इनायतखां जहां जाता वहीं उसे राजपूत अत्यन्त प्रसन्न दिखाई देते थे। राजपूतों के घरों में मंगल-गान होते देखकर उसका खून खौल उठा और "वीर दुर्गादास की जय" के नारे सुनकर वह आपे से बाहर होगया। वह शीघ्रता से देसुरी की ओर बढ़ा। मुसलमानों में इनायतखां का बहुत मान था क्योंकि उसकी पहुँच सम्राट तक थी और राज दरबार में उसे आदरणीय स्थान प्राप्त होता था। यही कारण था कि मुगल सरदार भी उसका आदर करते थे और मुगल सूबेदार भी उसकी बात मानता था। देसुरी पहुंचते ही उसने अपना आतंक जमाने की कोशिश की। देसुरी में भी दुर्गादास की विजय के समाचार पहुँच चुके थे इसलिये वहां भी राजपूत प्रसन्न होकर गाने बजाने में मग्न हो रहे थे। इनायतखां को यह सहन न हो सका। उसने मुगल सैनिकों को आज्ञा दी कि प्रजा को गाने बजाने से रोका जाये और जो न माने उसका वध कर दिया जाये, बस फिर क्या था! आज्ञा की देर थी। क्रूरता पूर्वक दमन चक्र चलने लगा। देसुरीगढ़ में दरबार करके इनायतखां ने वहां के प्रमुख राजपूत सरदारो को बुलवाया और उन्हें खूब खोटी खरी सुनाते हुये उन पर विद्रोह का आरोप लगाया। कुछ मुख्य-मुख्य राजपूत सरदार बन्दी बना लिये गये और उन पर राजद्रोह का अपराध लगाकर उन्हें दण्ड देने की व्यवस्था की गई। उन सरदारों में वीरवर दुर्गादास के श्वसुर वृद्ध ठाकुर नाहरसिंहजी भी थे। उन सब अभागे निर्दोष सर्दारों को इनायतखां के आदेश से मौत के घाट उतार दिया गया। इस समाचार से देसुरी में बड़ी हलचल मच गई। राजपूत लोग बिगड़ उठे, किन्तु उन्हें

मुगल सेना ने कठोरता पूर्वक दबा दिया। सारे गांव में घोर आतंक छा गया।

उसी समय जब देसुरी में मुगल आतंक स्थापित हो चुका था। इनायतखां ने सुना कि दुर्गादास के पास देसुरी का समाचार लोगो ने भेज दिया है। देसुरी के वीर राजपूत सरदार सर्व श्री सुरतानसिंह, केसरीसिंह आदि शाही बन्दी के रूप में गढ़ मे कैद थे। उसे यह भी मालूम हो गया कि बालीगढ़ से वीर रूपसिंह उदावत ने चुने हुये वीरो की एक सेना देसुरी की रक्षा का प्रबन्ध करने के लिये भेज दी है। उसने देसुरी की रक्षा का प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया। चुने हुये प्रमुख मुगल वीर गढ़ की रक्षा के लिये नियुक्त कर दिये, सेना की संख्या बढ़ा दी। उस समय मुगलों को सहायता मिलना बड़ा सरल हो गया था क्योंकि राजस्थान में मुगलों का जाल बिछा हुआ था, जगह-जगह मुगलों की छावनियां बनी हुई थीं, कई राज्यों पर तो मुगलो का ही आधिपत्य था और मुगल सूबेदार वहां का शासन करते थे। आवश्यकता पड़ने पर इशारा मिलते ही दिल्ली आगरा व अजमेर से प्रचुर सहायता प्राप्त हो सकती थी और यही कारण था कि मुगलों का साहस बढ़ा हुआ था।

इनायतखाँ ने जब यह सुना कि दुर्गादास बालीगढ़ से चल दिया है और महाराज महासिंह अपनी महारानी व लालवा के सहित वहीं हैं तो उसने यह अवसर वहाँ आक्रमण करने का अधिक उपयुक्त समझा। वह फौरन दूसरे मार्ग से एक सेना लेकर बालीगढ़ जा पहुँचा। उस समय बालीगढ़ मे सेना का प्रबन्ध भी यथोचित न था क्योंकि वीर रूपसिंह उदावत अपनी चुनी हुई सेना सहित दुर्गादास की सहायतार्थ देसुरी पर आक्रमण करने के लिये चले गये थे। बालीगढ़ की रक्षा का भार पृथ्वीसिंह पर ही था।

इनायतखाँ को बालीगढ़ जीतने में अधिक समय न लगा। राजपूत सेना पराजित हो गई और फिर बालीगढ़ मुगलों के अधिकार में आगया। पृथ्वीसिंह मुगलों के सामने ठहर न सका और अपने प्राणों के रक्षार्थ युद्ध क्षेत्र से भाग गया। गढ़ पर मुगलों की विजय पताका फहराने लगी। इनायतखाँ ने महाराज महासिंह के परिवार को वन्दी वना लिया।

विजय के मद में फूलता हुआ इनायतखाँ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ महाराज महासिंह अपनी रानी लालवा सहित अपने दुर्भाग्य को कोस रहे थे। इनायतखाँ को देखते ही महाराज महासिंह क्रोध से उबल पड़े और बोले—"मुगल सरदार! क्या यही तुम्हारी वीरता है? गढ़ की रक्षा का जब तक प्रवन्ध पूर्ण रूप से रहा उस समय तुम कहां छिपे हुये थे? दुष्ट चन्द्रसिंह की सहायता करके तुमने मांड़ो को नष्ट किया किन्तु उसका परिणाम शुभ न निकला। चन्द्रसिंह को विश्वासघात और पाप का परिणाम मिल गया। अब जब कि तुम्हारा वह सहायक ही न रहा तो फिर पाप कार्य करके अन्याय और अत्याचार का पक्ष क्यों ले रहे हो और अकारण ही मारवाड़ की निर्दोष भूमि पर शोणित की नदियां क्यों वहा रहे हो?"

इनायतखां ने कहा—"हां मुझे मालूम है कि चन्द्रसिंह का वध कर दिया गया है। मैं उसका वदला अवश्य लूंगा। विद्रोहियों को जब तक उचित दण्ड न दिया जायगा तब तक शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। दुर्गादास को भी उसकी धृष्टता का मजा चखाया जायगा और राजपूतों को मालूम हो जायगा कि मुगलों का सामना करना वच्चों का खेल नहीं। अब तुम्हें जोधपुर भेजने का प्रवन्ध करता हूँ जहां मुगल सूवेदार के सम्मुख तुम्हें उपस्थित किया जायेगा और विद्रोह करने का उचित दण्ड दिया जावेगा। लालवा भी तुम्हारे साथ जायेगी। सूवेदार साहव

इसे पाकर अवश्य प्रसन्न होंगे।" इनायतखां यह कह कर वहां से चला गया।

उसके जाने के बाद महासिंह अपने भविष्य की कल्पना करके चिन्तित हो गये। उन्हें अपने लिये इतनी चिन्ता न थी जितनी लालवा की थी। जिस मान मर्यादा को अब तक सुरक्षित रक्खा है वही कहीं कलंकित न हो जाये, यही भय था। लालवा भी यही विचार कर रही थी। एक चन्द्रसिंह मर गया तो उसके लिए कई चन्द्रसिंह पैदा हो गये। कभी-कभी सौन्दर्य भी अपने आप अपना शत्रु हो जाता है और सुन्दरता ईश्वरप्रदत्त वरदान न होकर अभिशाप बन जाती है। उसकी समझ में न आया कि वह क्या करे। क्या वह स्वयं अपने शरीर को ही नष्ट करले या अपने सौन्दर्य को, जो उसका शत्रु बना हुआ है, विकृत बना ले। वह कुछ निश्चय न कर सकी और विचारों में बहते बहते ही वह अपने माता-पिता सहित बन्दी बनाकर जोधपुर भेज दी गई। वह मन ही मन अपने फूटे हुये भाग्य पर रो उठी।

जोधपुर पहुँचकर जैसा इनायतखां ने कहा था वही हुआ। महाराज महासिंह व महारानी को कठोर कारावास का दण्ड मिला और उन्हे किले की एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। लालवा के अपूर्व सौंदर्य ने मुगल सूबेदार दिलावरखां को अपनी ओर आकर्षित कर लिया और वह उससे निकाह करने को उतारू हो गया। लालवा के तीव्र विरोध करने पर भी उसे गढ़ की एक कोठरी में बन्द कर दिया गया ताकि वह कारावास के दुखों से मुक्त होने के लिये मुसलमान होकर निकाह करना स्वयं ही स्वीकार करले। सूबेदार का विचार था कि पहले बल प्रयोग करना उचित नहीं। यदि स्वेच्छा से लालवा नहीं मानी तो कुछ समय पश्चात् बल प्रयोग किया जावेगा।

इधर वीर दुर्गादास ने जब देसुरी के पतन का हाल सुना तो वह बड़े क्रुद्ध हुये। उन्होंने फौरन सेना को देसुरी पर आक्रमण करने की आज्ञा देदी। उनके वीर साथ ही चले। ठाकुर रूपसिंह उदावत की सहायक सेना भी सहायतार्थ आ पहुंची। दल-बल सहित दुर्गादास ने देसुरी पर धावा बोल दिया। वहाँ पहुँचते ही अकस्मात् गढ़ को घेर लिया। अचानक आक्रमण होने से मुगल सैनिक घबड़ा उठे। उत्तेजित राजपूतों ने किले का फाटक तोड़ डाला और अन्दर घुस गये। वीर दुर्गादास मार-काट मचाते हुये आगे बढ़ रहे थे। किले में प्रवेश करते हुये उन्हे सामने ऐसा दिखाई दिया मानो इनायतखां खड़ा है। वे झपट कर वहां पहुँचे और तत्क्षण ही उसे मार गिराया। राजपूत सैनिक मुगलों की खबर ले रहे थे। इनायतखां के मरते ही सारे मुगल सैनिक निरुत्साहित हो गये और आत्म-समर्पण कर दिया। पाठकों को याद होगा कि इनायतखां जोधपुर चला गया था किन्तु जाने के पूर्व वह अपनी शक्ल सूरत के ही वीर मुगल को अपना अधिकार दे गया था। उसका वेष भी अपने जैसा ही बना दिया था जिससे लोग उसे ही इनायतखां समझें। दुर्गादास ने जिस इनायतखां का वध किया वह नक़ली इनायतखां ही था किन्तु यह रहस्य उस समय किसी को विदित न हो सका।

विजय प्राप्त करके बन्दी राजपूत सरदारों की सुधि ली गई। गभीरसिंह के पिता ठाकुर केसरीसिंह भी कारागार में ही थे। सबको बन्धन मुक्त करके दुर्गादास विश्राम करने बैठे ही थे कि एक संदेशवाहक ने उन्हें एक पत्र लाकर दिया। पत्र लालबा का लिखा हुआ था जिसमें उसने वालीगढ़ पर आक्रमण का सारा हाल लिखते हुये सहायता की प्रार्थना की थी। उसने यह भी सूचित किया था कि महाराज गढ़सिंह जी को राजद्रोह के अपराध में दो तीन दिन में ही प्राण दण्ड दे दिया जावेगा और

स्वयं लालबा को धर्म परिवर्तन कराके मुग़ल सूबेदार के साथ उसका निकाह कर दिया जावेगा।

ऐसा समाचार पढ़कर दुर्गादास को विश्राम करना कब रुचिकर हो सकता था। क्रोधावेश में उनका बुरा हाल हो गया और वे दांतों से होठ चबाने लगे। उन्होंने दूसरे ही दिन जोधपुर पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। इच्छा तो थी ही अब कारण भी मिल गया। बस भोर होते ही सेनायें एकत्र करने का कार्य आरम्भ हो गया। कुछ समय में ही १८ हजार सेना एकत्र हो गई। एक हजार सेना तो वालीगढ़ और दो हजार देसुरी की रक्षार्थ भेज दी गई। शेष १५ हजार जोधपुर पर आक्रमण करने के लिये रख ली। मुग़लों की असंख्य सेना के सामने यह संख्या कुछ नहीं थी किन्तु करते भी क्या। जितनी सहायता मिल सकी उसी पर सन्तोष करना पड़ा। वीर दुर्गादास को एकमात्र परमात्मा का भरोसा था और वह उसी को अपना आधार समझते थे। जोधपुर की ओर चलते हुये रास्ते में मेवाड़ की सेना भी आती हुई मिल गई जिसके सेना नायक कुमार जयसिंह थे। राणाजी ने दुर्गादास की सहायता के लिये ही ३५ हजार सेना भेजी थी। अब राजपूत सेना की संख्या पचास हजार हो गई। कुमार जयसिंह से मिलकर दुर्गादास को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने राणा के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की।

मारवाड़ की राजधानी जोधपुर पर आक्रमण करने के लिये राजपूत जयघोष करते हुये चल पड़े। दुर्गादास ने बड़ी कुशलता से सेना का प्रबन्ध कर दिया। सेना के कई भाग करके कुमार जयसिंह, जसकरण, मानसिंह, केसरीसिंह व करणसिंह को सेना नायक बना दिया। तेजकरण, गंभीरसिंह, वहीदखां व हमीदा को अपने साथ रक्खा। रास्ते भर राजपूत जोशीले गाने गाते

जा रहे थे। सबके मनमें उत्साह भरा हुआ था। न किसी को भूख की चिन्ता थी न विश्राम की। दिन रात अविराम चलते हुये सेना जोधपुर जा पहुँची। एक पहाड़ी प्रदेश में सेना का पड़ाव डाल दिया गया और रात्रि का आगमन होते ही आक्रमण के लिये सेना बढ़ गई। गढ़ के दोनों द्वारों पर सेनायें जा पहुँची और गढ़ को इस प्रकार चारों ओर से घेर लिया गया कि न तो कोई बाहर निकल सके और न कोई अन्दर जा सके। कुछ सेना राजपूतों की सहायता के लिये अलग रक्खी गई और कुछ को सीमा के पास भेज दिया गया ताकि बाहर से आने वाली सहायता को रोक सके। रात्रि के पिछले पहर में राजपूत वीरों ने गढ़ पर एक साथ धावा बोल दिया। गढ़ के फाटक बलपूर्वक तोड़ दिये गये। जब तक मुग़ल सेना तैयार हो उससे पूर्व ही राजपूत अन्दर घुस आये और मारकाट मचाने लगे। "हर हर महादेव" और "अल्लाहो अकबर" की आवाजों से दिशायें गूँजने लगी। मुग़ल सरदार दिलेरखां धर्म की दुहाई देकर मुग़लों में उत्साह उत्पन्न कर रहा था। मुग़लों की विशाल सेना जोश मे आकर तेज़ी से लड़ने लगी।

राजपूतों के पैर उखड़ने ही वाले थे कि दुर्गादास सहायक सेना लेकर आ पहुँचे। राजपूतों को उत्साहित करते हुये दुर्गादास स्वयं पिल पड़े। उसी समय इनायतखां ने धोखे से दुर्गादास पर पीछे से वार करना चाहा किन्तु वहीदखा ने उसे देख लिया। वह झपटकर आगे बढ़ा और इनायतखां के वार करने से पहले ही उसने अपने वार से उसे गिरा दिया और उसी क्षण उसका सर काट लिया। दुर्गादास ने पीछे मुड़कर देखा तो इनायतखां को देखकर आश्चर्य में पड़ गये। उसी समय यह रहस्य सबको मालूम हुआ कि देसुरी मे जो इनायतखां मारा गया था वह नकली था। दुर्गादास ने वहीदखां के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते

हुये उसकी सावधानी की बहुत प्रशंसा की। वीर दुर्गादास की कठोर मार सहन न करके मुगल सेना व्याकुल हो उठी । मुगल अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो गये और सूवेदार दिलावरखां भी घवड़ा उठा। उसने रक्षा का एक अन्तिम उपाय सोचा और ऊपर से ही चिल्लाकर दुर्गादास से कहा—"यदि तुम महासिंह व उनके परिवार की रक्षा चाहते हो तो अपनी सेना को गढ़ से बाहर ले जाओ और युद्ध वन्द कर दो अन्यथा अभी इसी समय तुम्हारे सामने सबका वध कर दिया जायेगा ।" दुर्गादास ने देखा कि वास्तव में महाराज महासिंह वधे हुए वन्दी के रूप में उसके पास ही उपस्थित हैं और दिलावरखा की तलवार उनके सिर पर नाच रही है।

दुर्गादास इतने मूर्ख न थे कि इस चाल में आजाते और अपनी विजय को धूल में मिला देते। उन्होने भी जिन मुगल सरदारों को वन्दी बनाया था उन्हें वहां लाकर उपस्थित कर दिया और कहा—"दिलावरखां ! यदि तुम इन सरदारों का जीवन चाहते हो तो अपने कुविचार छोड़ दो। तुम अपनी पराजय स्वीकार करके सन्धि करना चाहो तो हम तैयार है।"

दिलावरखां अव चक्कर में पड़ गया। उसने सोचा एक महासिंह के वदले इतने मुगल सरदार मारे जायेंगे और फिर भी युद्ध बन्द न होगा तो इससे लाभ ही क्या ? उसने कुछ सोचकर कहा—"मैं शाही फरमान की प्रतीक्षा मे हूँ इसलिये कुछ समय के लिये युद्ध स्थगित कर दिया जावे। सम्राट का उत्तर आने पर सन्धि कर ली जायेगी।"

यह वात दुर्गादास ने मान ली और युद्ध वन्द करके अपनी सेना पड़ाव पर पहाड़ी-प्रदेश मे भेज दी। कुछ राजपूत वीर मुगल वन्दियों सहित गढ़ में ही अधिकृत भाग में रह गये । दुर्गादास

को विश्वास था कि सम्राट की सेना अवश्य सहायतार्थ आरही है इसलिये दिलावरखां ने यह चाल खेली है किन्तु इसका उपाय पहले ही दुर्गादास ने कर लिया था। यह समाचार मिलते ही कि मुगल सेना सहायतार्थ आ पहुँची है दुर्गादास ने अपनी एक सेना मुगलों को रोकने के लिये भेज दी। राजपूतों ने रास्ते में ही मुगल सेना को रोक लिया और बुरी तरह पराजित किया। सेनानायक मोहम्मदखां पकड़ा गया। पहाड़ी प्रदेश में विजय की घोषणा करदी गई और शाही झंडे राजपूतों ने अपने अधिकार में कर लिये। कुछ राजपूत वीर दिलावरखां के पास पहुंचे। वह इतना घबड़ा गया था कि राजपूतों के आते ही गढ़ कुंजियाँ उसने उन्हें सौंप दीं और आत्मसमर्पण कर दिया। जोधपुर पर राजपूती झंडा फहराने लगा। राजपूतों ने "वीर दुर्गादास की जय" के नारे लगाये और शाही वन्दियों को मुक्त किया। महाराज महासिंह भी महारानी सहित मुक्त कर दिये गये।

लालवा कारागार की कोठरी में बैठी हुई उदास चित्त विचारों में लीन थी। उसके पास कोई समाचार पहुँचता ही नहीं था किन्तु उसे यह मालूम था कि वीर दुर्गादास की सेना उसकी रक्षार्थ आ पहुँची है। उसे दुर्गादास की वीरता पर पूर्ण विश्वास था किन्तु विलम्ब होने के कारण वह भावी आशंका से भयभीत हो रही थी। वह जानती थी कि मुगलों की सैन्यशक्ति प्रबल है और सम्राट की सहायता भी उन्हें प्राप्त हो रही है। उसे एक-एक पल एक-एक युग के समान प्रतीत हो रहा था। चिन्ताओं ने उसके शरीर को दुर्बल व कान्तिहीन बना दिया था। उसने निश्चय कर लिया था कि दिलावरखां से निकाह करने के पूर्व वह गले में फंदा डालकर आत्म-हत्या कर लेगी।

अचानक उसने द्वार खुलने का शब्द सुना। उसने सिर उठाकर देखा तो सामने ही दिलावरखां को पाया। वह यकायक

कांप उठी। दिलावरखां ने आते ही कहा "लालबा! क्यों अपने कंचन से शरीर को नष्ट कर रही हो। तुम्हारी यह धारणा निर्मूल है कि दुर्गादास तुम्हारी रक्षा करने में सफल हो जायगा। सम्राट की सेनायें अधिकाधिक संख्या में यहां आने वाली हैं और वह समय दूर नहीं है जब कि तुम्हारे रक्षक शाही बन्दी के रूप में उपस्थित किये जायेंगे और अपने किये का फल भोगेंगे। उस समय तुम्हें विवश होकर निकाह की तैयारी करनी होगी। यदि इस समय स्वेच्छा से नहीं तो उस समय मेरी आज्ञा से तुम्हें मेरी बेगम बनकर मेरे हरम को सुशोभित करना होगा। सोचो और विचार करो लालबा! इस हठ में क्या रक्खा है। क्या तुम्हारे लिये यह कम गौरव की बात है कि एक साधारण राजपूत सरदार की कन्या होकर तुम मारवाड़ प्रदेश के एक मित्र अधीश्वर दिलावरखां की बेगम बनने जारही हो? यह तुम जानती ही हो कि अन्य मुसलमान शासकों की भाँति मैंने तुम्हारे साथ धृष्टता का कोई व्यवहार न किया और न अब तक बलपूर्वक तुम्हारे साथ निकाह करन की चेष्टा ही की किन्तु यदि तुमने अपना विचार न बदला तो विवश होकर मुझे बल प्रयोग करना ही होगा। मैं तुम्हें आज का समय विचार करने के लिये देता हूँ। कल तुम्हारा धर्म परिवर्तन करके अवश्य ही मेरे साथ निकाह कर दिया जायेगा।" दिलावरखां यह कह कर चला गया।

लालबा सब कुछ सुनती रही और उसने दिलावरखां को कुछ भी उत्तर न दिया। सारा समय उसने आंसू बहाते ही बिता दिया। दूसरा दिन हुआ और प्रभात उसके लिये भयानकता का सन्देश लेकर आया। वह घुटने टेक कर कातर स्वर से परमपिता परमात्मा को संबोधित करते हुए कहने लगी—"जगतपिता! तुम्हारी क्या इच्छा है? क्या हमारे पवित्र कुल मे कलंक लगते हुये देखकर ही तुम्हें प्रसन्नता होगी? हमें किस अपराध का यह

कठोर दंड दिया जा रहा है ? लोग कहते हैं कि तुम्हारी दरबार में अन्याय नहीं होता, देर हो सकती है किन्तु अन्धेर नहीं होता अबलाओ व दीन दुखियों की पुकार तुम अवश्य सुनते हो और असहाय जनों की सहायता करते हो। किन्तु अब क्या हो गया ? समय आ पहुँचा किन्तु तुम्हे कुछ ध्यान ही नहीं है। भगवान ! क्या एक अबला की पुकार व्यर्थ ही जायेगी।

लालवा भगवान से निवेदन करने में ऐसी लीन हो रही थी कि उसे यह भी पता न लगा कि उसकी कोठरी का द्वार कब खुला और किस समय कुछ व्यक्तियों ने प्रवेश किया। उसके गले में फंदा पड़ा था और वह कातर विनीत स्वर से दोनो हाथ जोड़ कर नेत्र बन्द किये घुटने टेके हुये ईश्वराधाना में लीन थी।

"बहन लालवा ! उठो ! परमात्मा ने तुम्हारी प्रार्थना सुनली है। तुम्हारे दुर्भाग्य का सूर्य्य अस्त हो गया है। नेत्र खोलो और देखो तुम्हारे आत्मीयजन तुम्हारे सामने खड़े हैं।" एक व्यक्ति ने कहा।

लालवा ने नेत्र खोले और देखा कि वहीदखां सामने खड़ा है और उपरोक्त शब्द उसके ही मुख से निकले है। उसके साथ ही कुमार जयसिंह, जसकरण और तेजकरण भी थे। लालवा हर्षावेश में कुछ क्षण मौन रह कर उन्हें देखती रही और फिर बोली— "मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ भैया वहीद।"

वहीद—"कुछ समय पहले यह स्वप्न ही रहा होगा किन्तु अब वही स्वप्न प्रत्यक्ष हो गया है। बहन ! वीरवर दुर्गादास तुम्हारा पत्र पाते ही यहां आगये थे और उन्होंने गढ़ को जीतने में सफलता प्राप्त करली है। महारानी साहबा ने भी उदयपुर से सहायतार्थ एक सेना लेकर कुमार जयसिंह को भेज दिया था। वीर राजकुमार ने इस युद्ध में मेवाड़ी वीरता का पूर्ण परिचय दिया है।।"

राजकुमार जयसिंह की वीरता का वखान सुनकर लालवा ने कृतज्ञता प्रकट करने के लिये कुमार की ओर देखा। कुमार की दृष्टि पहले से ही लालवा की ओर थी। नेत्र चार होते ही लालवा ने लज्जित होकर मुख नीचा कर लिया। उसके सुन्दर कपोल नारी सुलभ लज्जा से रक्त वर्ण हो गये और उसके अधरों पर मन्द मुस्कान की रेखायें नृत्य करने लगीं। कुमार की भी यही दशा थी। दोनों प्रेम की मूक नीरव भाषा में पारस्परिक भावों को व्यक्त कर रहे थे जो एक दीर्घ समय से हृदय में गुप्त थे। गढ़ मांडों के पतन के समय जंगल में एक वार पहले भी कुमार को लालवा ने अपनी रक्षा करते हुये देखा था और उसी समय से कुमार व लालवा दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो गये थे।

वहीदखां व अन्य उपस्थित व्यक्तियों से इन दोनों के हार्दिक भाव गुप्त न रह सके। नीरवता को भंग करते हुये वहीदखां ने कहा—"चलो वहन लालवा! सव लोग तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। महाराज महासिंह व महारानी तुम्हें देखने को व्याकुल हो रहे हैं।" लालवा मानों सोते से जाग पड़ी। वह उठ खड़ी हुई और उन लोगों के साथ कारागार से वाहर निकली। सवसे पहले उसने अपने मुक्तिदाता वीरवर दुर्गादास को श्रद्धा पूर्वक प्रणाम किय और कृतज्ञता प्रकट की। उनका आशीर्वाद लेकर वह अपने माता पिता से मिली। महाराज महासिंह व महारानी अपनी पुत्री को पाकर हर्ष-विह्वल हो गये और प्रसन्नता व प्रेम के आंसू वहाने लगे। महाराज महासिंह के भतीजे व भानजे मानसिंह व गम्भीरसिंह भी उसी समय वहाँ आगये और अपनी वहन से मिलकर वहुत प्रसन्न हुये।

नवां परिच्छेद
"शरणागत शहज़ादा"

जोधपुर पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त सर्वत्र हर्ष की धारायें प्रवाहित हो चलीं। राजपूत रासरंग में मग्न हो गये और मंगल गान गाने लगे। हर जगह से वीर दुर्गादास के लिए वधाई सन्देश आने लगे, किन्तु दुर्गादास उस समय भी निश्चिन्त होकर विश्राम नहीं कर रहे थे क्योंकि उन्हें अभी युद्ध के अन्त होने का विश्वास नहीं हुआ था। उन्होंने राजपूत सरदारों व सैनिकों से कहा—"भाइयो! यह समय रंग-रेलियाँ मनाने का नहीं है। अभी हमारा उद्देश्य पूर्णतया सफल नहीं हुआ है। हमें युद्ध करने के लिये अभी हर समय तैयार रहना चाहिये। मुझे अभी मालूम हुआ है कि शाहज़ादा अकवर व सेनापति तहव्वुरखां एक विशाल सेना सहित इधर वढ़े चले आरहे हैं। मैंने उनकी सेना को रोकने का प्रवन्ध कर दिया है किन्तु यह अपर्याप्त है और उनके आगमन का समाचार मिलते ही हमें अपने शस्त्रों से उनका स्वागत सत्कार करने के लिये प्रस्थान करना होगा। आप लोग वीर हैं और महान् भी, किन्तु अभी आपको अधिक महान वनना है और वीरता की पराकाष्ठा दिखानी है। राठौर व सीसोदिया वीरों ने परस्पर मिलकर जिस एक्यता का परिचय दिया है वह अपूर्व है, उज्ज्वल है और अनुकरणीय भी। हम लोग एक होकर असम्भव को भी सम्भव वना सकते हैं और मुगल ही क्या संसार में कोई शक्ति भी ऐसी नहीं जो हमें नीचा दिखाने का साहस कर सके। सम्राट ने प्रवल सैन्य-शक्ति सहित हम पर आक्रमण करके हमें पद दलित करने

का बीड़ा उठाया है। इस समय हमारे लिये जीवन मरण की समस्या उपस्थित है। या तो हमारा इस बार सर्व सहार ही हो जावेगा या हम लोग उठ खड़े ही होगे। अपना कर्तव्य समझ कर हम लोग प्राणों को हथेली पर रखकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के हेतु इस जलती हुई भयंकर ज्वाला में कूद पड़ेंगे और अपने पूर्वजों के आदर्श को पुनः स्थापित करके शत्रुओं को यह दिखला देंगे कि हम मिट्टी के बने हुए पुतले नहीं हैं प्रत्युत तक्षक से भी भयंकर और महाकाल से भी अधिक विकराल हैं। वीरो! स्वतंत्रता के दीवाने महाराणा प्रताप और महाराजा शिवाजी के चरित्र का हमें अनुकरण करना है। चलो! बढ़ो! जननी जन्म-भूमि तुम्हारी ओर एकटक दृष्टि से देख रही है। स्वर्ग के देवी देवता पुष्पहार लिये तुम्हारे स्वागतार्थ खड़े हुये हैं। रणचण्डी तुम्हारा आवाहन कर रही है। आओ! हम रणभूमि में रण-भेरियां वजायेंगे, 'हर हर महादेव' के भयंकर तुमुल नाद से शत्रुओं के वक्ष को विदीर्ण कर देगें, और कठोर कराल करवाल लेकर शत्रुओं के लहू से होली खेलते हुए गले में मुण्डमाल धारण किये हुये ताण्डव नृत्य रचायेंगे।"

वीर दुर्गादास के ओजस्वी भाषण का उपस्थित वीरों पर पूर्ण प्रभाव पड़ा। "हर हर महादेव, भगवान् एकलिंग की जय, वीर दुर्गादास की जय" के नारों से दिशायें गूंज उठीं। उसी समय सन्देश वाहक ने समाचार सुनाया कि मुगल सेना आ-पहुँची है और राजकुमार जयसिंह बड़ी वीरतापूर्वक उसका सामना करके उसे आगे बढ़ने से रोक रहे हैं। राजपूत वीर जोश में तो थे ही। उसी समय शस्त्र निकाल कर उठ खड़े हुये। असंख्य तलवारों की चमक से विजली का सा प्रकाश फैल गया। राजपूत सेनायें "वीर दुर्गादास की जय" बोलती हुई आगे बढ़ गईं। महारानी के संगठन कार्य से सेना की सख्या में काफी

वृद्धि हो गई थी और लोग स्वतंत्रता का मूल्य समझने लग गये थे।

मुगल और राजपूत परस्पर भिड़ गये और खूब डट कर युद्ध हुआ। मुगल सेनानी मुगल वीरों को दीन की दुहाई दे-देकर उत्साहित कर रहे थे किन्तु राजपूतों की भयंकर मार से वे लोग घबड़ा उठे। राजपूत विजयी हो गये और सेना नायक तहव्वुरखां भी पराजित होकर वन्दी बना लिया गया। उसके वन्दी होते ही सेना हताश होकर भाग खड़ी हुई। शाही झंडे छीन लिये गये और विजय के बाजे बजने लगे। मुगलों ने सन्धि का झंडा ऊँचा कर दिया और शाहजादा अकबर ने दुर्गादास के समक्ष उपस्थित होकर शरणागत के रूप में सन्धि का प्रस्ताव रक्खा। दुर्गादास के आदेश से युद्ध बन्द कर दिया गया और राजपूतों व मुगलों में सन्धि हो गई।

युद्ध नीति के अनुसार मारवाड़ राज्य के विभिन्न भागों में रहने वाले मुगलों को भी राजपूतों ने वन्दी बना लिया किन्तु दुर्गादास की आज्ञानुसार किसी भी वन्दी के साथ दुर्व्यवहार न किया गया। सब वन्दियों से मित्रता का सम्बन्ध निबाहा गया। केवल अन्तर यही था कि वे नजरबन्दी थे और परतन्त्र थे अन्यथा उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया गया। शाहजादा अकबर और सेना-नायक तहव्वुरखां व मोहम्मदखां आदि भी राजपूतों की ही देख-रेख मे थे। शहजादे के साथ उसकी पुत्री रजिया भी थी जो युद्ध-भूमि में उसके साथ ही आई थी।

मारवाड़ की जनता विजय का समाचार सुनकर फूली न समाती थी। झुण्ड के झुण्ड आकर जोधपुर में एकत्र होने लगे। शत्रु लोग भी मित्र बनकर बधाई देने आ रहे थे। अन्य राज्यों के शासकों ने भी बधाई सन्देश के साथ ही नाना प्रकार के

उपहार भी दुर्गादास के लिये भेजे थे। महाराणा राजसिंह ने भी एक बहुमूल्य राजसी पोशाक भेंट स्वरूप भेजी थी। एक विराट सभा का आयोजन किया गया क्योंकि जनता वीर दुर्गादास के दर्शनों के लिये अत्यन्त उत्सुक हो रही थी। सभा में उपस्थित होकर वीर दुर्गादास ने हाथ जोड़कर समस्त जनता का अभिवादन किया जिसका उत्तर जनता ने पुष्प-वर्षा करके व 'वीर दुर्गादास की जय' के नारे लगा कर दिया। वीर दुर्गादास ने अपने प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के उपलक्ष में जनता को अनेकानेक धन्यवाद दिये और कहा—

"वन्धुगण! आपने जो मेरे प्रति सम्मान प्रदर्शित किया है उसके लिये मैं आप सबका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। मैंने जो कुछ किया वह सब आप लोगों के सहयोग से ही किया है वरना मैं अकेला क्या कर सकता था। मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है जो कि प्रत्येक देशाभिमानियों व स्वदेशभक्तों को करना चाहिये। आप लोगों को याद होगा कि आरम्भ में हम लोगों ने सहयोग देने में संकोच प्रकट किया क्योंकि जनता मुगलों के आतंक से प्रभावित थी और उसे यह आशा थी कि मारवाड़ प्रदेश स्वतन्त्र नहीं हो सकता। मुगलों की अपार शक्ति से लोहा लेना मुट्ठीभर राजपूतों के लिये संभव दिखाई न दिया किन्तु सत्य और धर्म की सदैव जय होती है। हमें परमात्मा ने वल दिया, साहस दिया और अपने शुभचिन्तकों का हमें सहयोग भी प्राप्त हुआ। मेवाड़ राज्य ने जो हमारी सहायता की है हम उसे कदापि नहीं भूल सकते। दूरदर्शी वीर महाराणा ने अपने दोनों वीर पुत्रों को सेना सहित हमारी सहायतार्थ भेजकर हमारा कितना उपकार किया है। मारवाड़ निवासी उनके इस अमूल्य उपकार को कभी नहीं भूल सकते। विधर्मी होने पर भी हमारे कुछ मुसलमान साथियों ने भी हमारी कम सहायता नहीं की

है। उनकी अमूल्य सेवाओं को भी हम कभी नहीं भूल सकते। वीर कन्या हमीदा और वीरवर वहीदखां की वीरता, निष्पक्षता व निर्भीकता की प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते। हमें अपना मत पहले भी प्रकट कर चुके हैं कि हमारा द्वेष किसी धर्म या जाति से नहीं है। हम परतंत्रता के विरोधी हैं और न्याय व सत्य का पक्ष लेकर अत्याचारी व अन्याय के विरुद्ध हमें सदैव संग्राम करते रहेंगे। पापी व अत्याचारी व्यक्ति चाहे हमारी ही जाति के क्यों न हो हमारे पक्के शत्रु हैं और हम उन्हें नष्ट करने में कभी संकोच न करेंगे। हमारे पूर्वजों का यही आदेश है और यही उनकी शिक्षा है। परमपिता परमात्मा की असीम कृपा से हमने इस युद्ध में विजय प्राप्त करली है किन्तु हमारी संधि अभी केवल शाहजादा अकबर से ही हुई है सम्राट से नहीं। वह समय दूर नहीं है जब कि सम्राट हमारी इस विजय पर बुरी तरह झल्ला कर हमें कुचल देने के लिये स्वयं ससैन्य आक्रमण करेंगे। यह असंभव है कि सम्राट औरंगजेब मुगलों की इस पराजय को अपनी पूर्ण पराजय स्वीकार करके शान्त बैठे रहें। जब तक वह स्वयं पराजित होकर संधि न करलें तब तक हम मारवाड़ को पूर्णतया स्वतंत्र नहीं मान सकते। इसलिये भाइयो! मेरा आपसे पुनः यही निवेदन है कि आप विजय मद में अपने कर्त्तव्य को न भूल बैठें और राग रंग में डूबकर अपनी इस विजय को पराजय के रूप में परिणित होने का अवसर न दें। अभी हमारा कार्य अपूर्ण करके ही हम दम लेंगे।"

वीर दुर्गादास का भाषण समाप्त होते ही जयध्वनि से वातावरण गूंज उठा और पुष्प वर्षा होने लगी।

वीर मुगल सरदार वहीदखां ने उठकर जनता को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और और कहना प्रारम्भ किया—"प्यारे

भाइयो हमारे पूज्य सरदार वीरवर दुर्गादासजी ने जो कुछ आदेश दिया है हमें उसका पालन करना चाहिये। हमें गर्व है कि हमें दुर्गादास जैसा महान् व्यक्ति अपने नेता के रूप मे प्राप्त हुआ है। वीर सरदार ने जो कुछ किया है कदाचित् ऐसा कोई नहीं कर सकता। उन्होंने अपना सर्वस्व स्वतंत्रता के संग्राम की भीषण ज्वाला में जलाकर खाक कर डाला और छाती पर पत्थर रख कर सब कुछ सहन किया। यह सब किसलिये? अपने लिये नहीं प्रत्युत जननी जन्मभूमि की रक्षा के लिये और अपने पिता तुल्य स्वामी स्वर्गीय महाराज जसवन्तसिंह की इच्छा पूर्ति के लिये। यदि वह चाहते तो जोधपुर राज्य से भी बढ़ कर उन्हें कुछ मिल सकता था किन्तु वे त्यागवीर हैं, आदर्श महान पुरुष हैं और मैं तो यह कहूँगा कि पुरुषरूप में साक्षात देवता हैं। वह समय निकट ही समझिये जब कि यही देव पुरुष इस राज्य का पूर्ण उद्धार करेगा और आप लोगों के ही सामने मारवाड़ के राजकुमार को जोधपुर की राजगद्दी पर बिठायेगा। मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि सम्राट औरंगजेब किसी भी उपाय से सफल नहीं हो सकता। उसके अत्याचार का घड़ा भर चुका है और वह फूट कर उसका ही अन्त करने वाला है। मैं जानता हूँ कि वह स्वयम् दुर्गादास से भयभीत रहता है और इस सम्बन्ध में प्रयत्नशील है कि दुर्गादास उसके मित्र बन जायें। मैं मुगल हूँ और इस्लाम धर्म का अनुयायी हूँ किन्तु 'सम्राट की कट्टर कठोर नीति का पक्षपाती नही हूँ। मैं उन मुसलमानों को इस्लाम धर्म का सच्चा अनुयायी नहीं समझता जो धर्म की आड़ लेकर मनमाने अत्याचार करते हैं और मक्कार बनकर जीवन व्यतीत करते हैं। सम्राट को प्रजा में जाति भेद का बीज बोना उचित नहीं। शासक के लिये हिन्दू मुसलमान दोनों समान हैं। अहा! वह दिन कब होगा जब यह दोनों कौमें

भारतवर्ष को अपना देश समझ कर परस्पर भाई-भाई का व्यवहार करते हुये गले मिलेंगी और जातीय द्वेष को भुलाकर परस्पर सुसगाठत होकर देश के उत्थान मे सहयोग देंगी। मैं तो समझता हूँ कि यह सब कुछ हमारी अपनी भावनाओं के अतिरिक्त हमारे नेताओं के आदर्श पर अवलम्बित है। यदि वीरवर दुर्गादास जैसे कुछ नेता सारे देश मे हो जावें तो मारवाड़ ही क्या सारे देश का इस संकट से उद्धार हो सकता है। ऐसा नेता बनने के लिये कठोर तपस्या व त्याग की आवश्यकता है और जिस समय ऐसे ही आदर्श त्याग की भावना हमारे हृदय में उत्पन्न होगी हम वास्तविक स्वतंत्रता को प्राप्त करके सच्चा सुख उपभोग करने में समर्थ हो सकेंगे। हमें इस समय पूर्ण रूप से वीरवर दुर्गादास को सहयोग प्रदान करना है ताकि शेष कार्य भी सुगमतापूर्वक पूरा हो जाये और मारवाड़ प्रदेश अत्याचार व अन्याय के शासन से मुक्त होकर शान्ति व सुख से परिपूर्ण साम्राज्य का अनुभव करके गदगद हो उठे।"

इस प्रकार कई वीरों ने अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा जनता को उत्तेजित किया। उपस्थित जनसमूह ने वीर दुर्गादास की हर प्रकार की सहायता करने का प्रण किया। जयध्वनि करते हुये सब अपने-अपने स्थान पर चले और दुर्गादास भी अपने साथियों सहित अपने डेरों में आगये। कुछ लोग डेरों मे थे और कुछ राजमहल में। राजवन्दी गढ़ में महल के पास ही नजरवन्दी रक्खे गये थे और उन पर कड़ा पहरा था किन्तु उन्हे हर प्रकार की सुविधायें प्रदान की गई थी। शाहजादा अकबर भी अपनी पुत्री रजिया सहित एक सुरक्षित व सुसज्जित स्थान मे ठहराये गये थे। दुर्गादास ने उनकी सुविधाओं का विशेष ध्यान रक्खा था और उनके साथ राजाओं का सा व्यवहार ही किया जा रहा था।

दुर्गादास ने गुप्तचरों का जाल चारों ओर फैला रक्खा था जो उसे क्षण-क्षण का समाचार दिया करते थे। मुगल शाहजादा अकबर, मुगल सेनापति व अन्य बन्दियों के साथ भी गुप्तचर लगे हुये थे और उनके हर कार्य की निगरानी रक्खी जाती थी। जोधपुर की रक्षा का उचित प्रवन्ध कर दिया गया और विश्वासी रक्षक नियुक्त कर दिये गये और उनके साथ वीर सैनिक रक्खे गये। दुर्गादास केवल वीर योद्धा ही नहीं प्रत्युत दूरदर्शी राजनीतिज्ञ भी थे। वे बुद्धिमान एवं चतुर थे और सहज ही किसी के छल फरेब में आने वाले न थे। औरंगजेब उनसे केवल इसीलिये न डरता था कि वे अत्यन्त वीर थे बल्कि वह यह भी समझता था कि उसकी कोई भी चाल दुर्गादास के होते हुये सफल नहीं हो सकती क्योंकि वह उसकी नस-नस से परिचित था। औरंगजेब डाल-डाल चलता तो दुर्गादास पात-पात चलता था। एक बार सम्राट औरंगजेब के सामने दो चित्र लाये गये उनमें से एक में तो महाराज शिवाजी घोड़े पर चढे हुये सैनिक वेष में एक हाथ में तलवार लिये हुये दूसरे हाथ में कच्चे चावल खाते हुये बताये गये थे और दूसरे में दुर्गादास को घोड़े पर सवार अपने भाले की नोक में भुट्टा छेदकर आग में भूनते हुये बताया गया था। उन चित्रों को देखकर औरंगजेब ने कहा—"इस पहाड़ी चूहे को (शिवाजी) वश में करना फिरभी आसान है किन्तु दुर्गादास तो गज़ब की बला है, इसे काबू में करना बड़ा कठिन है।"

उन्हीं दिनों महाराणा राजसिंह उदयपुर में बीमार पड़ गये। रोग ऐसा भयंकर निकला कि दिन प्रति दिन बढ़ता ही गया। उनकी ऐसी दशा का समाचार सुनकर दुर्गादास राजकुमार जयसिंह को लेकर उदयपुर चले गये। जाते समय वह अपने विश्वास पात्र साथियो को आवश्यक बातें समझा गये। जाने से पूर्व

राजकुमार जयसिंह भी सब लोगों से स्नेहपूर्वक मिले । जिस समय वह महासिंह से मिलकर जा रहे थे उस समय उनके नेत्र किसी की खोज में व्याकुल दिखाई देने लगे । उन्होंने इधर-उधर देखा और फिर निराश होकर आगे बढ़ गये। कुछ ही आगे बढ़ने पर उन्हें सामने से राजकुमारी लालवा आती दिखाई दी । उनकी बाछें खिल गईं और उनके अधरों पर मुस्कान खेलने लगी मानों उनके नेत्र जिसकी खोज में व्याकुल थे वही अब उनके सामने है। वह सकुचाते हुये बोले "राजकुमारी"...........

राजकुमारी लालवा वहीं ठहर गई और नीची नजर किये पृथ्वी की ओर देखने लगी। वह इस समय एकान्त में राजकुमार जयसिंह के पास खड़ी होकर बातें करके लज्जा व भय का अनुभव कर रही थी । वह मौन रही और मुख से कुछ न बोल सकी ।

राजकुमार जयसिंह ने फिर कहा—"राजकुमारी ! मैं आज जा रहा हूँ ।"

लालवा मानों चौंक पड़ी किन्तु किंचित सावधान होकर बोली—"कहां ?"

राजकुमार ने कहा—"पिताजी बहुत बीमार हैं इसलिये मुझे आज ही उदयपुर जाना है । मेरे साथ दुर्गादासजी भी जा रहे हैं।

लालवा ने कहा—"क्या महाराणाजी बीमार हैं ?"

राजकुमार ने उत्तर दिया—"हां ! उनकी दशा सन्तोषजनक नहीं है अतः ऐसी दशा में मेरा वहां शीघ्र पहुँचना ही उचित है।

लालना ने कहा—"अवश्य ! इस समय उनकी सेवा करना आपका परम कर्त्तव्य है । जो कुछ हमारे योग्य सेवा हो हम सदैव उसके लिये तैयार हैं, हमें आज्ञा देने में आप किसी प्रकार

का संकोच न करें। आपके यहां से इस समय जाने का हमें अवश्य दुःख होगा किन्तु इस अवसर पर आपको न जाने देना भी उचित न होगा।"

राजकुमार ने कहा—"क्या मेरे जाने का तुम्हें भी दुःख होगा राजकुमारी?"

लालवा ने उत्तर दिया—"आप जैसे वीर परोपकारी व्यक्ति के विछोह का दुःख किसे न होगा? हमारी मंगल कामनायें सदैव आपके साथ रहेंगी और आपके शुभ दर्शनों की अभिलाषा उस समय तक हमारे हृदय में बनी रहेगी जब तक कि आप शीघ्र से शीघ्र हमें अपने दर्शनों से कृतार्थ न करेंगे।"

राजकुमार ने कहा—"तुम्हारी सुन्दर मधुर स्मृति मैं अपने साथ लिये जा रहा हूँ। तुम्हारी मनोहर मूर्ति मेरे इस हृदयपट पर अंकित हो चुकी है। वह अमिट है और अमिट ही रहेगी।"

लालवा ने कहा—"यह मेरा सौभाग्य है।"

उसी समय वहां दुर्गादास आगये। उन्होने राजकुमार के मुख से निकला हुआ अन्तिम वाक्य सुन लिया था और लालवा का उत्तर भी उनके कानों में पहुंच चुका था किन्तु उन्होंने अपने भाव प्रकट न किये मानों उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। आते ही दुर्गादास ने लालवा से कहा—"बेटी लालवा! मैं कुछ समय के लिये उदयपुर जा रहा हूँ और शीघ्र ही लौटने की चेष्टा करूंगा। अपने माता-पिता का ध्यान रखना। तुम स्वयं चतुर और वीर हो अतः विशेष समझाने की आवश्यकता नहीं है किन्तु यह कह देना उचित समझता हूँ कि वर्तमान-परिस्थितियों पर निगाह रखते हुये सावधान रहना और यहां के सब समाचारों से मुझे सूचित करती रहना।"

लालवा ने सम्मान प्रदर्शित करते हुये उत्तर दिया—"पूज्य-वर ! आप विश्वास रक्खें। आपके आदेश का पूर्णतया पालन किया जायेगा।"

दुर्गादास ने स्नेह पूर्वक आशीर्वाद देते हुये लालवा के सिर पर हाथ फेरा और राजकुमार जयसिंह को लिये हुये वहां से चले गये। राह में चलते हुये दुर्गादास ने लालवा की प्रशंसा करते हुये कई बातें कहीं किन्तु राजकुमार जयसिंह चुप ही रहे और शान्त होकर सुनते ही रहे यद्यपि उनके हार्दिक भाव सूक्ष्मदर्शी दुर्गादास से गोपनीय न रह सके।

उनके उदयपुर पहुँचने के कुछ समय पश्चात् ही महाराणा राजसिंह का स्वर्गवास होगया। उनके निधन के समाचार से सर्वत्र शोक छा गया। महाराणा सर्व प्रिय शासक थे। उनके मित्र ही नहीं शत्रु भी उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहते थे। वह उदार, परोपकारी, परम धार्मिक, महान् वीर और दुःख में दूसरों की सहायता करने वाले थे। वह अपने अनुपम गुणों के लिये, राजनैतिक ज्ञान व शासन योग्यता की दृष्टि से सारे देश में परम प्रसिद्ध थे। यद्यपि औरंगजेब ने प्रगट रूप में उनके निधन समाचार पर शोक प्रकट किया किन्तु इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि मन ही मन अवश्य ही खिल उठा होगा।

महाराणा राजसिंह के स्वर्गवासी होने पर राजकुमार जयसिंह मेवाड़ (उदयपुर) के पवित्र राजसिंहासन पर बैठे। प्रजा उनके वीरत्वपूर्ण कार्यों से अपरिचित न थी अतः उन्हें अपने शासक के रूप में देखकर अपना शोक भूल गई। महाराणा जयसिंह जी के राज्याभिषेक होने के समय तक दुर्गादास वहीं रहे। महाराणा की इच्छा ही न होती थी कि दुर्गादास उदयपुर से चले जायें किन्तु मारवाड़ की परिस्थिति उस समय अनुकूल

न थी इसलिये दुर्गादास का शीघ्र ही वहां पहुँचना आवश्यक था। महाराणा ने उन्हें विश्वास दिलाया कि वह सदैव मारवाड़ की सहायतार्थ तत्पर रहेंगे और जैसे सम्बन्ध दोनों राज्यों के पहले थे वैसे ही आगे बने रहेंगे। मारवाड़ की स्वतन्त्रता के लिये व राजकुमार अजीतसिंह को जोधपुर के सिंहासन पर सुशोभित करने के लिये दोनों राज्य एक होकर मुगलों का सामना करेंगे। दुर्गादास ने महाराणा के प्रति असीम कृतज्ञता प्रकट की और जोधपुर जाने की तैयारी की।

उधर दुर्गादास के जोधपुर छोड़ने का समाचार मुगलों को भी प्राप्त हो गया। औरंगजेब मुगलों की इस पराजय से बहुत परेशान था। उसे जब यह विदित हुआ कि उसका पुत्र अकबर राजपूतों से मिल गया है तो उसे बड़ा दुःख हुआ और क्रोध भी आया। तहव्वुरखां व मोहम्मदखां पर भी उसे क्रोध आरहा था कि उन्होंने भी अकबर को कुछ न समझाया और उसके साथ ही वे लोग भी राजपूतों से मिल गये और अपनी बची-खुची सेना को भी राजपूतों के आधीन कर दिया। मुगल सम्राट का यह सब से बड़ा अपमान था। यह उसके जीवन काल में पहला ही समय था जबकि इस प्रकार उसे अपने विशाल शत्रुओं से मुंह की खानी पड़ी और मुगल साम्राज्य का भावी सम्राट उसका पुत्र अकबर एक साधारण राजपूत सरदार की शरण में गया।

औरंगजेब कुचले हुये नाग की तरह बल खाने लगा और राजपूतों को नीचा दिखाने व अकबर को वापस लाने का उपाय सोचने लगा। वह अकबर व उसके साथी सेनानायकों को बन्दी बनाकर उचित शिक्षा देना चाहता था। उसे उन पर इतना क्रोध आरहा था कि यदि उस समय वे लोग उसके सम्मुख होते तो कदाचित वह उन्हें कच्चा ही चबा डालता। वह अपने सेना

नायकों व चापलूस मंत्रियों से इस विषय में परामर्श लेने लगा और राजपूतों पर आक्रमण करने से पूर्व अपनी कुटिल नीति द्वारा उनमें फूट डालने का उपाय सोचने लगा। अन्त में उसने एक उपाय सोच ही लिया और मन ही मन अपनी चालाकी पर प्रसन्न हो उठा। उसने अकबर के नाम एक पत्र लिखा—

"प्रिय पुत्र अकबर,

तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई कि तुम अपनी कुटिल नीति से राजपूतों को खूब उल्लू बना रहे हो। वे लोग तुम्हारी चाल में आगये हैं यह महान संतोष का विषय है। तुम्हारा यह विचार निस्संदेह सराहने योग्य है कि युद्ध में राजपूतों को आगे करके तुम पीछे से उन पर आक्रमण करके उन्हें नष्ट करने में सफल हो सकोगे। राजपूत वीर अवश्य हैं किन्तु भोले भी बहुत हैं अतः उन्हें अपने जाल में फंसाये ही रखना। कहीं ऐसा न हो कि उन्हें तुम्हारे विषय में सन्देह हो जाये कि तुम्हारी मित्रता व प्रीति दिखावा मात्र ही है। सावधान रहना और समाचार बराबर इसी तरह भेजते रहना। शेष फिर—

तुम्हारा पिता—"

सम्राट ने यह पत्र अपने एक विश्वासी सेवक को दे दिया और उससे कहा—'देखो! यह पत्र सावधानी से ले जाना और किसी बड़े राजपूत सरदार को ही देना। समय देखकर काम करना। ऐसा न हो कि राजपूतों को सन्देह हो जाये।" सेवक भी अपने स्वामी के समान ही अत्यन्त धूर्त और चतुर था। उसने सम्राट को विश्वास दिलाया कि यह कार्य अत्यन्त सावधानी व चालाकी से ही किया जावेगा।

मुगल दूत ने वह पत्र राजपूतों के डेरे में जाकर एक राजपूत सरदार को दे दिया। राजपूत सरदार ने ज्योंही वह पत्र खोला

उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वीर दुर्गादास उस समय तक उदयपुर से वापस न आये थे। उनके भाई, पुत्र आदि वहीं थे। सबने बारी-बारी से पत्र को पढ़ा और उस पर विचार किया। उन्हें शहजादा अकबर पर बड़ा क्रोध आया। क्या राजपूतों को मूर्ख बनाने के लिये ही उसने यह ढोंग रचा था? उनका तो यह विचार था कि अकबर की सहायता करके औरंगजेब का अन्त कर दिया जाये और उसे ही मुगल सम्राट बनाया जाये। उन्हें क्या पता था कि यह शहजादा आस्तीन का साँप बनकर कपट का नाटक रचेगा। सरल हृदय वीर दुर्गादास भी उसकी चाल में आगये किन्तु जिस समय उन्हें इस कपट नाटक का रहस्य विदित होगा उस समय उन्हें कितना दुःख व पश्चाताप होगा। यही विचार करके उन्होने दुर्गादास के आने की प्रतीक्षा भी की और अकबर का साथ छोड़ दिया। सारी राजपूत सेनायें मुगलों के पड़ाव (शहजादा अकबर का शिविर) से वापस बुलाली गई। केवल कुछ गुप्तचर वहाँ का समाचार जानने के लिये छोड़ दिये गये। राजपूत सरदारों ने अकबर के पास आना जाना भी बन्द कर दिया और प्रत्येक प्रकार की सहायता के द्वार शहजादा व उसके साथियों के लिये बन्द हो गये। जो राजपूत उसके मित्र बने हुए थे वही उसके शत्रु बन गये।

शहजादा अकबर अपने डेरे में सुख-विलास के सागर में तैर रहा था। मदिरा व कामिनी का वह आरम्भ से प्रेमी था। युद्ध-क्षेत्र में भी वह सुख विलास के इन साधनों से वंचित रह कर जीवित न रह सकता था। लावण्यमयी सुन्दरी नवयौवनाओं के कामुक उत्तेजक नृत्य, उनके कोकिल कंठों से निकले हुए मादक मधुर गान व सुरा से भरे हुए प्याले अकबर के मदमत्त युवा-जीवन को रंगीन बनाये रहते थे। राजपूतों का मित्र

वनने के बाद वह सम्राट की ओर से चिन्ता रहित हो गया था क्योंकि उसे दुर्गादास की वीरता पर पूर्ण विश्वास था और वह समझता था कि दुर्गादास के विरुद्ध मुगल लड़कर विजय नही पा सकते। दुर्गादास द्वारा अभयदान प्राप्त कर उसे किसी का भय न रहा।

अकस्मात् जव उसने यह सुना कि राजपूतों ने उसका साथ छोड़ दिया तो पहले तो उसे विश्वास न हुआ किन्तु अपने नेत्रों से सारा हाल देखकर वह चकित रह गया। सारी राजपूत सेनायें उसे छोड़कर चली गई थीं और राजपूतों के व्यवहार उन लोगों के प्रति उदासीनता के भाव प्रदर्शित कर रहे थे। उसे बड़ा दुःख हुआ और आश्चर्य भी। वह उसका कारण जानने की चेष्टा करने पर भी न जान सका। उसे यह अवश्य पता लगा कि राजपूतों को उस पर सन्देह हो गया है। किन्तु उसने तो कभी कोई कार्य ऐसा नहीं किया जो राजपूतों के विरुद्ध हो और सन्देह का प्रतीक हो। उसने राजपूत सरदारों से मिलने की चेष्टा भी की किन्तु वह उसमें भी सफल न हो सका। चारों ओर से निराश होकर वह अपने भविष्य की कल्पना करके अत्यन्त भयभीत हो उठा। उसने तहव्वुरखां को और कुछ अपने अन्य विश्वासी सेना नायकों को अपने पास बुलाया और इस विषय में उनसे परामर्श करने लगा। सबके मुखों पर चिन्ता दुःख व भय के भाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो रहे थे। अकवर ने कहा—"तहव्वुरखां! हमें राजपूतों से ऐसी आशा कदापि न थी। मैं राजपूत के स्वभाव से खूब परिचित हूँ और उनके साथ काफी रह चुका हूँ किन्तु ऐसा कटु अनुभव मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ।"

तहव्वुरखां—"हमें भी महान् आश्चर्य है। समस्त संसार जानता है कि राजपूत लोग अपनी वात के पक्के धनी होते हैं

और प्राण देकर भी अपने वचन से नहीं टलते। अभी वे आपको सम्राट बनने में सहयोग देने के लिये तैयार थे और अभी अचानक ही ऐसा परिवर्तन हुआ कि सब लोग उदासीन हो गये और हमसे मिलने-जुलने व बात करने में भी संकोच करते हैं। हमारे किस कार्य अथवा व्यवहार ने हमारे प्रति उनके हृदय में ऐसे भाव उत्पन्न कर दिये ? अवश्य ही इसमें कुछ रहस्य है जिसको किसी प्रकार मालूम करना ही चाहिये।"

अकबर—"यही तो मैं जानना चाहता हूँ। अवश्य ही उनके हमसे विमुख होने का कोई मुख्य कारण है। मैं स्वयं इस विषय में उनसे मिलकर इस रहस्य का उद्घाटन करना चाहता हूँ। हमारी स्थिति इस समय बड़ी भयंकर हो गई है। राजपूतों से प्रथक रहकर हम इस समय अपने जीवन की रक्षा भी नहीं कर सकते।"

मोहम्मदखां–आपका विचार सत्य है। सम्राट अब हमें कभी क्षमा प्रदान नहीं कर सकते क्योंकि उनकी दृष्टि में अब हमें विद्रोही हो गये हैं। अपने गुप्तचरों द्वारा मुझे पता लगा है कि सम्राट को हमारे षड्यन्त्र के विषय में सब कुछ विदित हो गया है कि हम लोग आपको सम्राट बनाना चाहते हैं और इस सम्बन्ध में हमने राजपूतों से सहायता प्राप्त करने का वचन भी ले लिया है।

अकबर—क्या सच ? सम्राट को इस षड्यन्त्र का पता कैसे लगा ? हमारी यह कार्यवाही तो बहुत गुप्त रक्खी गई थी। क्या हमारे दल में ही कोई हमारा शत्रु भी है जो हमारे समाचार वहाँ तक पहुंचाता है।

तहव्वुरखां—"नहीं ऐसा तो विश्वास नहीं होता किन्तु सम्राट भी शान्त बैठने वाले साधारण व्यक्ति नहीं हैं। उनके

गुप्तचर बराबर हमारे पीछे लगे हुये हैं जिनके द्वारा यहाँ के सब समाचार सम्राट को विदित होते रहते हैं।"

अकबर—"यह तो बहुत बुरा हुआ कि सम्राट को हमारे षड्यन्त्र का पता लग गया। दुर्गादास के साथ रहने से हमें इसका भय नहीं था किन्तु ऐसी दशा मे जब हम अकेले रह गये हैं हमें बड़ी चिन्ता हो रही है। आह! अब क्या होगा?"

तहव्वुरखां—"चिन्ता की बात तो अवश्य है किन्तु किया क्या जाये? राजपूतों का भी दोष नहीं है। मुगलों ने क्या उनके साथ कम विश्वासघात किया है? बार-बार ठोकरें खाने पर उन्हें विश्वास भी किस प्रकार हो सकता है? एक पापी सारी नाव को डुबो देता है। सम्राट के विश्वासघाती व्यवहार के कारण विश्वास नहीं रहा।"

मोहम्मदखां—"किन्तु हम भी राजपूतों को यह बता देना चाहते हैं कि सब मुगल विश्वासघाती नही होते। हमारी वास्तविकता ज्ञात होने पर अवश्य ही राजपूत दुःखित व लज्जित होंगे। हम सम्राट की सेना का डट कर सामना करेंगे और समय पड़ने पर अपने प्राणों का बलिदान करने मे भी न हिचकिचायेंगे। राजपूतों को स्वयं विदित हो जायगा कि हम अपनी आन पर प्राण देने के लिये सदैव उद्यत रहते हैं और विश्वासघात करना महान् पाप समझते हैं।"

तहव्वुरखां—"निश्चय ही अब हम को यही करना होगा।"

अकबर को भी यही सलाह माननी पड़ी। सेना नायकों को सेना तैयार करने का आदेश दे दिया गया। मुगलों में इस समय उत्साह था। सेनानायक जान की बाजी लगाकर रणभूमि की ओर प्रयाण करने के लिये उत्तेजित होते हुए तत्पर हो चुके थे। सम्राट की सेना शाहजादा मोअज्जम की अध्यक्षता में

अजमेर से चल कर राजस्थान प्रदेश में बढ़ती हुई आरही थी। उस सेना का प्रधान लक्ष्य शहजादा अकबर को उसके प्रधान सहायकों सहित बन्दी बनाकर सम्राट के सम्मुख उपस्थित करना था।

राजपूतों को भी सम्राट की सेना का समाचार मिल चुका था। उस समय तक दुर्गादास भी उदयपुर से आगये थे। राजपूतों द्वारा जब उन्हें शहजादा अकबर के विश्वासघात की बात मालूम हुई तो उन्हें भी बड़ा दुःख हुआ और क्रोध भी आया। दुर्गादास के आदेश से राजपूतों ने अपनी सेना का पड़ाव देववाड़ी की पहाड़ियों में डाल दिया। सेनाय पहाड़ियों में इधर-उधर जा छुपीं और अवसर की ताक मे सशस्त्र तैयार हो गईं। सामने की ओर तो मुगल सेनाएँ थीं जो अजमेर से चल कर उन्हीं की ओर आ रही थीं और इधर देववाड़ी के पहाड़ी प्रदेश में राजपूत सेनाएँ डटी हुई थीं। यदि राजपूत चाहते तो अकबर को उसकी सेना के सहित समाप्त कर सकते थे किन्तु कुछ सरदारों के कहने पर भी दुर्गादास ने ऐसा करना स्वीकार न किया। उन्होने स्पष्ट कह दिया कि—"राजपूतों का यह धर्म नहीं है कि इस प्रकार किसी को बिना किसी अपराध के ही नष्ट कर डालें। यह माना कि अकबर ने विश्वासघात किया है किन्तु जब तक हम उन लोगों का ऐसा व्यवहार स्वयं अपने नेत्रों से न देख लें तब तक हम उन्हें उनके अपराध का दण्ड नहीं दे सकते। सम्भव है इस पत्र में कुछ रहस्य हो और हमें फंसाने के लिये ही यह जाल रचा गया हो। हमने इन लोगों से मित्रता का व्यवहार रक्खा है और इसके अतिरिक्त वे हमारे बन्दी भी हैं अतः उनके साथ ऐसा व्यवहार करना हमारे लिये उचित नहीं। यदि वे वास्तव में विश्वासघाती हैं तो अवश्य

उन्हें दण्ड दिया जायेगा और आप देखेंगे कि कुछ समय में ही अपनी करनी का फल उन्हें मिल जायगा ।"

दुर्गादास की नीति पर सबको विश्वास था अतः कोई कुछ कहने का साहस न कर सका। सब लोग शान्त होकर समय की प्रतीक्षा करने लगे। दुर्गादास ने सेना का प्रबन्ध इस प्रकार किया था कि या तो वह मुग़लों का साथ छोड़कर राजपूतों की शरण ले या सम्राट की सेना द्वारा बन्दी बना लिया जावे।

सम्राट की सेना के समीप आते ही तहव्वुरखां व मोहम्मदखां अपनी सेना लेकर जा पहुँचे। दोनो ओर मुगल सेनायें थीं, युद्ध होने लगा। अकबर की ओर के सेना नायक बड़ी वीरता पूर्वक लड़ रहे थे। उन्होने सम्राट की सेना के छक्के छुड़ा दिये किन्तु विशाल सेना के सामने कब तक खड़े रह सकते थे। मोहम्मदखां तो युद्ध में ही वीरगति को प्राप्त हुआ और तहव्वुरखां बन्दी बना लिया गया। अकबर की सेना हार गई। अकबर को समाचार पहले ही मिल गया था। वह सपरिवार भाग कर पहाड़ियों में छुप कर अपनी जान बचाता हुआ फिर रहा था और दुर्गादास की खोज में व्याकुल हो रहा था। सम्राट की सेना ने अकबर की बहुत खोज की किन्तु उसका पता ही न लगा। अन्त में निराश होकर मोअज्जम अपनी सेना को लेकर वापस अजमेर लौट गया। मोअज्जम राजपूतों से लड़ने के लिए आगे न बढ़ सका। कारण यह था कि उसकी सेना काफी थक चुकी थी और लगभग आधे से अधिक सैनिक युद्ध में काम आगये थे। इस बची-खुची थकी-मांदी सेना से वीर-दुर्गादास का सामना करना मोअज्जम ने उचित न समझा।

मोअज्जम से युद्ध का समाचार सुनकर औरंगजेब को अकबर के भागे जाने का अत्यन्त खेद हुआ। इस बात पर

उसने मोअज्जम को कुछ बुरा-भला कहा और सन्देह प्रकट करते हुए यहां तक कह डाला—"मालूम होता है तुमने अकबर को जान बूझ कर छोड़ दिया है। कदाचित तुम्हें भाई के प्रेम ने ऐसा करने के लिये विवश कर दिया। तुमने अपने पिता की आज्ञा व सम्राट की आज्ञा को भ्रातृ-स्नेह के आगे तुच्छ समझा।" मोअज्जम ने कुछ न कहा और सिर नीचा किये सब कुछ सुनता रहा मानों सम्राट के कथन में अवश्य कुछ सत्यता का अंश था।

तहव्वुरखां जब बन्दी के रूप में सम्राट के सन्मुख लाया गया तो सम्राट ने घृणा से उसकी ओर देखते हुए कहा—"नमक हराम सेनापति! क्या इसीलिये मैंने तुम पर विश्वास करके शहजादा अकबर के साथ भेजा था? तुमने अपने दीन—ईमान का भी विचार न किया? तुम्हें आलमगीर के क्रोध का भी ध्यान न रहा? बोलो! तुम्हारे अपराध का क्या दण्ड दिया जाये?"

तहव्वुरखां निर्भीकता पूर्वक सीना ताने हुये सामने खड़ा था। वह भयरहित होकर कहने लगा—"जहांपनाह जो दण्ड चाहें दे सकते हैं। मैं इस समय कैदी हूँ और एक कैदी इसका निर्णय कभी नहीं कर सकता। यदि मैं इस समय स्वतन्त्र होता और मेरे हाथ में शस्त्र होता तो मैं उत्तर दे सकता था। जहांपनाह अपने हृदय पर हाथ रखकर देखें कि विश्वासघात वास्तव में किसने किया है और सकल संसार के सम्राट उस परम पिता परमात्मा के सामने वास्तविक अपराधी कौन है? मैंने सत्य का पक्ष छोड़ कर असत्य को ग्रहण नहीं किया। निरपराधों का खून बहाकर दीन व ईमान की दुहाई मैंने कभी नहीं दी, धर्म का ढोंग रचकर सच्चाई की आड़ में कपट का नाटक मैंने नहीं रचा। राज्य के लोभ में पूज्य पिता को कारागार

में डालकर अपने निर्दोष भाइयों के खून से मैंने अपने हाथ नहीं रंगे। अपने विश्वासी सेनापतियों को जिन्होंने राज्य के हित के लिये जान की बाजी लगादी छल फरेब से मार डालने का षड्यन्त्र मैंने नहीं रचा.........

औरङ्गजेब अधिक न सुन सका। उसने तहव्वुरखां की बात काटते हुये गरज कर कहा—"चुप रहो! तुम्हारा इतना साहस हो गया है कि सम्राट के सामने वन्दी होने पर भी बकवाद कर रहे हो। सम्भव था कि निवेदन करने पर मैं तुम्हें क्षमा प्रदान कर देता। किन्तु अब मैं देखता हूँ कि तुम सीमा से आगे बढ़ गये हो अतः तुम्हारा अपराध अक्षम्य हो गया है।"

तहव्वुरखां—"मैं क्षमा याचना करने की मूर्खता कर भी नहीं सकता। मैं जानता हूँ कि मुझे सम्राट क्या दण्ड देना चाहते हैं। अन्तिम समय में अपना यह कर्त्तव्य समझता हूँ कि सम्राट व साम्राज्य के हित के लिये ही सम्राट को अन्धकारमय भविष्य को सूचना दे दूं। अब भी समय है आलमगीर! सम्हल जाइये और धर्मान्धता व स्वार्थ को छोड़ कर अपनी हिन्दू प्रजा पर पुत्रवत् स्नेह रखते हुये वीरवर दुर्गादास से सन्धि कर लीजिये वरना याद रखिये इन लोहे के चनों को आप नहीं चबा सकते और जिस राज्य को आपने अपने भाइयों के लहू से सींच कर प्राप्त किया है उसी को राजपूत वीरों की तलवारें खण्ड-खण्ड करके निर्दोष हिन्दुओं के रुधिर सागर में बहा देंगी।........."

औरङ्गजेब ने क्रोध से लाल होते हुये कहा—"बस बन्द करो अपनी बकवाद। मैं एक शब्द भी सुनना नहीं चाहता।" यह कहते हुये सम्राट ने सैनिक को आज्ञा दी कि तहव्वुरखां को वहां से हटा दिया जाये और उसी समय उसका सर काट कर उपस्थित किया जाये। सैनिक वीर सेनापति तहव्वुरखां को ले गये और

कुछ समय में ही उसका सर काट कर सम्राट के सामने ले आये। सम्राट का विश्वासी वीर सेनापति दिलेरखां जिसने सम्राट की कई वार प्राण रक्षा की थी और अपनी वीरता का सिक्का सारे राज्य पर जमा दिया था उस समय वहीं खड़ा था। उसने तहव्वुरखां का कटा हुआ सिर देखकर एक ठंडी आह भरी और चुप हो गया। यह देखकर सम्राट ने व्यंग से पूछा-दिलेरखां! क्या तुम्हें अपने मित्र के मरने का रंज हुआ है ? जिस वीर ने रणक्षेत्र में अगणित लाशों को तड़फते हुये देखकर अपने विकट हास्य से सदैव युद्ध-भूमि को प्रतिध्वनित किया है आज वही एक राजद्रोही का कटा हुआ सिर देखकर ऐसा अधीर हो उठा है कि उसके मुख से ठंडी आह निकल रही है।"

दिलेरखां ने उत्तर दिया—"जहांपनाह ! मेरे हृदय में अपने शहीद मित्र की पवित्र पुण्य स्मृति के भाव उसका कटा हुआ सिर देखकर उदय हो गये थे और वही उच्छ्वास बनकर मुख से निकले थे।"

औरंगजेब ने कहा—"मैं सत्य कहता हूँ दिलेरखां यदि तहव्वुरखां इतनी बकवाद न करता और क्षमा याचना कर लेता तो मैं उसके सारे अपराध क्षमा करके उसे सेनानायक बना देता किन्तु वह राजपूतों के साथ रहकर कुछ बदल गया था। तुम्हें याद होगा पहले वह ऐसा उद्दंड न था।"

दिलेरखां ने उत्तर दिया—"संभव है उसकी आंखों के आगे जो परदा पड़ा हुआ था वह राजपूतों के साथ रहकर दूर हो गया हो। यदि वह इस समय क्षमा याचना कर लेता तो मैं उससे घृणा करता किन्तु उसकी निर्भीकता व स्पष्टवादिता ने ही मेरे हृदय में उसके प्रति श्रद्धा के भाव भर दिये थे।"

सम्राट के भाव बदलने लगे। वह कहने लगा—"दिलेरखां तुम यह क्या कर रहे हो ? क्या तुम भी तहव्वुरखां का पक्ष ले रहे हो ? क्या मैं यही समझ लूं कि तुम भी मेरे शत्रुओं की प्रशंसा के गीत गा रहे हो ?"

दिलेरखां ने उत्तर दिया—"स्वामिन् ! यह सेवक सदा से राजभक्त रहा है और रहेगा। सम्राट की सेवार्थ व रक्षार्थ अपने प्राणों की भी भेंट चढ़ाने में मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ किन्तु सम्राट का शुभचिन्तन करते हुये राज्य के कल्याणार्थ जहांपनाह की कटु आलोचना करना भी मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। किसी ने कभी मुझे राज्य के अहित में सहयोग प्रदान करते हुये न देखा होगा।

औरंगजेब ने कहा—"मुझे तुमसे ऐसी ही आशा है दिलेरखां। मैं तुम्हें अपना विश्वसनीय सेनापति ही नहीं वरन् अपना आत्मीय बन्धु भी समझता हूँ। मुझे विश्वास है कि तुम कभी मुझसे विमुख होकर विश्वासघात न करोगे।"

इस प्रकार चतुर सम्राट ने बढ़ती हुई बात को वहीं समाप्त कर दिया। वह दिलेरखां को अप्रसन्न करना नहीं चाहता था क्योंकि वही एक ऐसा व्यक्ति था जिस पर सम्राट को गर्व था। यदि कभी किसी समय दिलेरखां उसे खोटी-खरी सुना भी देता तो वह सहन कर लेता था और हंसकर उसकी बातों को टाल दिया करता था। दिलेरखाँ को भी सम्राट की कुटिल कठोर नीति रुचिकर न थी और वह बहुधा इस सम्बन्ध में सम्राट की कटु आलोचना करके अपनी निर्भीकता व पक्षपात रहित स्पष्टवादिता का परिचय दे दिया करता था। दिलेरखां की वीरता में किसी को सन्देह न था और अपने इन्हीं गुणों के कारण वह विशाल मुगल साम्राज्य का प्रधान सेनापति बना हुआ था। उसने कई

वार औरंगजेब को समझाया कि राजपूतों से वैर बढ़ाना बुद्धिमानी नहीं है और अपनी हिन्दू प्रजा पर अत्याचार करना अपने ही पैरों में स्वयं कुल्हाड़ी मारना है। धर्मान्ध सम्राट ने उसकी बातों पर कभी ध्यान न दिया। अस्तु..............

पाठको ! अव शहजादा अकवर की भी सुधि लीजिये। वह वेचारा युद्ध क्षेत्र से भागकर अपने परिवार सहित देववाड़ी की पहाड़ियों में दुर्गादास की खोज करते-करते पहुँच गया। राजपूत सेना की टुकड़ियां इधर-उधर घूम रही थीं और इस प्रतीक्षा में थी कि कव शत्रु दल के लोग आयें और कव वे उन पर धावा वोल दें। अकवर को देखते ही उन लोगों को सन्देह हुआ किन्तु उसकी दीन दशा देखकर उन्होंने उस पर आक्रमण न किया और उसे सपरिवार दुर्गादास के पास पहुंचा दिया। वह तो चाहता भी यही था। अँधे को दो आँखें मिल गईं।

दुर्गादास उस समय अपने साथियों सहित पहाड़ी पर वैठे हुये तत्कालीन परिस्थिति पर विचार कर रहे थे। उसी समय अकवर सपरिवार वहाँ आ पहुँचा। दुर्गादास ने समझा कि कदाचित राजपूतों ने शहजादा को युद्ध करके पराजित कर दिया है और उसे सपरिवार वन्दी बनाकर यहाँ ले आये हैं। जब उन्होंने यह सुना कि वह शरण में आया है तो किसी को अकस्मात विश्वास न हुआ। अकवर विनीत कातर स्वर से कहने लगा—"वीर सरदार ! मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया था जिसके कारण आपने मुझे कहीं का न रक्खा। मुझे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है। जिधर जाता हूँ विपत्तियाँ अपने कराल भयानक वाहुपाश में मुझे वांधना चाहती हैं। एक ओर देखता हूँ तो कुआ और दूसरी ओर खाई नजर आती है। यदि मेरी यही दशा करनी थी तो पहले ही मुझे शरणागत के रूप मे क्यों अपनाया था ? क्या सांप छछूदर की सी गति

बनाने के लिये ही मुझे तुमने अपना मित्र बनाकर अभयदान दिया था? दुर्गादास! तुम राजपूत हो, सच्चे वीर हो, शत्रु भी तुम्हारे उच्च आदर्श का गुणगान करते नहीं थकते, फिर तुम्हारे होते हुए यह अनर्थ कैसे हुआ? राजपूत वीर अपनी प्रतिज्ञा से विमुख क्यों हुये?"

दुर्गादास ने कहा—"शहजादा साहब! आपने स्वयं अपने हाथों खाई खोदकर विपदाओं को निमन्त्रण दिया है। इसके लिए आप राजपूतो को दोषी नहीं ठहरा सकते। हम जान बूझ कर आस्तीन में सांप नहीं पाल सकते। स्वर्णपात्र में हलाहल देखकर भी हम उसे अमृत समझकर अपने अधरों से नहीं लगा सकते।"

अकबर ने आश्चर्य चकित होकर पूछा—"पहेलियाँ न बुझा कर स्पष्ट कहो दुर्गादास! मैं तुम्हारे कहने का कुछ भी अर्थ न समझा।"

दुर्गादास ने तत्काल ही एक पत्र अकबर को देते हुये कहा—"यह पत्र मेरे कथन का स्पष्टीकरण करेगा।"

अकबर ने पत्र लेकर पढ़ा और पढ़ते ही उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगी। उसका मुख सफेद पड़ गया और सिर चकराने लगा, किन्तु कुछ सम्हल कर वह चिल्ला उठा—'धोखा! धोखा।"

दुर्गादास ने कहा—"क्या आप इसे धोखा समझ रहे हैं? क्या यह लिखावट आपके पिता की नहीं है और क्या यह पत्र आपके पत्र के उत्तर में नहीं लिखा गया है? क्या प्रत्यक्ष उदाहरण देखकर भी प्रमाण की आवश्यकता अभी शेष रह गई है?'

अकबर ने उत्तर दिया—"यह सरासर कपट का जाल है जिसमें मुझे जान बूझकर फंसाया गया है। मैं यह स्वीकार

करता हूँ कि यह पत्र मेरे पिता का ही लिखा हुआ है किन्तु मैं शपथ पूर्वक आप सब लोगों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैंने किसी प्रकार का पत्र व्यवहार सम्राट से नहीं किया। यह सब कुछ सम्राट की कपट नीति का प्रत्यक्ष उदाहरण है। यदि यह पत्र मेरे ही नाम भेजा गया था तो पत्र-वाहक ने मुझे क्यों न दिया और यह राजपूतों के पास कैसे पहुँच गया ? क्या पत्र-वाहक इतना मूर्ख था कि राजपूत और मुगल में अन्तर भी न जानता था ? यह सब धोखा है, कपट है और मेरे विरुद्ध रचा गया भयंकर षड्यंत्र है।"

अकबर का सिर फिर चकराने लगा और यदि उसे पास ही खड़े हुये सैनिक न सम्हाल लेते तो वह वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ता। अकबर की पुत्री रजिया उस समय अपने पिता के साथ ही थी, यह हाल देखकर वह घबड़ा उठी। उसके कमल के समान नेत्रों से जलविन्दु छलक कर उसके अरुण कपोलों पर ढुलक पड़े। उसने कातर दृष्टि से वीरवर दुर्गादास की ओर देखा और विनीत स्वर से कहा—"मेरे पिता की रक्षा करिये वीरवर ! यह निर्दोष हैं, इनका हृदय दर्पण के समान निर्मल और गंगाजल के समान पवित्र है। इन्होंने विश्वासघात नहीं किया है प्रत्युत इन्हें फांसने के लिये सम्राट ने कपट का जाल बिछाया है। पूज्यवर ! मेरे पिता का विश्वास करिये और अपनी स्वाभाविक उदारता के अनुसार हमें अभयदान देकर शरणागतों को अपनाने की कृपा करिये।"

दुर्गादास का हृदय द्रवित हो उठा और उन्हें विश्वास हो गया कि अकबर निर्दोष है और यह कपट जाल सम्राट का ही बिछाया हुआ है। उसने अपने साथियों व वीर सामन्तों की ओर देखा। उन पर अकबर व उसकी पुत्री की प्रार्थना का कोई

प्रभाव न पड़ा। वे लोग शरणागत के रूप में शहजादा को स्वीकार करने के लिये सहमत न थे। उन्हें मुगलों पर विश्वास ही न रह गया था। जसकरण ने दुर्गादास से कहा—"भैया! हमारा पूर्व इतिहास हमें बता रहा है कि राजपूतों ने शत्रुदल पर दया दिखाकर सदैव अपना ही नाश किया है। सम्राट औरंगजेब ने ही हमारे साथ क्या कम विश्वासघात किया है? उसकी कपट पूर्ण नीति का आज यह परिणाम दिखाई दे रहा है। यह न भूल जाना चाहिये कि सांप के बच्चे सांप से कम भयंकर नहीं होते।"

अकबर यह सुनकर बड़ा निराश हुआ। उसने कहा—"वीर सरदार! तुम्हारा कथन यथार्थ है किन्तु सब लोग समान नहीं होते। मैं आप सब लोगों से विनय पूर्वक निवेदन करता हूँ कि मेरी प्रार्थना पर ध्यान दें और शरणागत की रक्षा का भार लेने की कृपा करें। राजपूतों ने शरणागत को कभी निराश नहीं किया है और असहाय जनों की रक्षार्थ अपने प्राणों की बाजी लगादी है। समस्त संसार इस बात को जानता है और इतिहास इसका साक्षी है। क्या इस समय मेरे लिये ही आप अपने जातीय गौरव को भूल जायेंगे?"

राजपूत सरदारों ने अकबर की विनय पर ध्यान न दिया और वे उस पर किसी भी प्रकार विश्वास न कर सके। अन्त में दुर्गादास ने जो शरणागत को निराश करना नहीं चाहते थे सब राजपूत सरदारों को समझाया और यहाँ तक कह डाला कि यदि कोई शहजादा को शरण देने के लिये तैयार न होगा तो वह अकेले अकबर की रक्षा का भार अपने ऊपर लेंगे। उन्होंने अकबर से भी कह दिया—"शहजादा साहब! मुझे खेद है कि आपके प्रति अविश्वास प्रकट किया गया। तत्कालीन कारणों से

ऐसा होना स्वाभाविक ही था। अब अकेला आपकी रक्षा का भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ और यदि आप मित्र की भांति मेरे साथ रहें तो जब तक मेरे प्राण हैं आपकी ओर कोई आंख भी नहीं उठा सकता।"

शहजादा अकबर ने कृतज्ञता पूर्वक वीर दुर्गादास की ओर देखा। दोनों परस्पर गले मिले और पास-पास ही बैठ गये। शहजादा रजिया के ठहरने का प्रबन्ध भी कर दिया गया। शहजादा अकबर की पत्नी अर्थात् रजिया की माता पहले ही मर चुकी थी। यद्यपि अधिकांश राजपूत अकबर की सहायता के लिये तैयार न थे किन्तु दुर्गादास की इच्छा के विरुद्ध वे कुछ भी न कर सके। जब उन्होंने देखा कि स्वयं दुर्गादास ही अकबर की रक्षा का भार ग्रहण कर रहे हैं तो उन्होंने अपने वीर सरदार के विरुद्ध कुछ न कहा और अकबर की सहायता करना स्वीकार कर लिया। रजिया, लालना व हमीदा के साथ आनन्द से रहने लगी और अकबर दुर्गादास के साथ रहकर निर्भीकता पूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगा। इतना होने पर भी अकबर के हृदय से सम्राट का भय दूर न हो सका और हर समय उसके मन में मुगलों के आक्रमण की शंका बनी ही रहती थी।

दसवां परिच्छेद

'प्रलोभन'

दुर्गादास को जितना हर्ष व सन्तोष अकबर की रक्षा का भार लेकर हुआ उससे अधिक दुःख तहव्वुरखां व मोहम्मदखां की मृत्यु का हुआ। जिस समय उन्होंने अपने गुप्तचरों से तहव्वुरखां व औरंगजेब का सम्वाद सुना और उन्हें यह ज्ञात हुआ कि राजपूतों का पक्ष लेने के कारण ही वीर मुगल सेनापति का अपमान पूर्वक वध किया गया तो प्रसन्नता व गौरव से उनका हृदय फूल उठा, साथ ही सम्राट की क्रूरता व सेनापति के अपमान पर उन्हें ऐसा क्रोध आया कि उनकी आंखों के डोरे लाल हो गये और वे अपने दांत पीसने लगे। सम्राट के फैलाये हुये जाल पर जब उन्होंने ध्यान दिया तो उन्हें उसके प्रति असीम घृणा उत्पन्न हो गई। पिता अपने पुत्र की जान का ग्राहक बना हुआ है और एक विशाल साम्राज्य का अधिपति होकर एक उजड़े हुए प्रदेश के विरुद्ध खड़ा होकर ऐसे कुचक्र द्वारा विजय प्राप्त करना चाहता है।

औरंगजेब ने चाल तो खेली किन्तु सफल न हुआ। समस्या को जितनी ही सुलझाने की चेष्टा की उतना ही वह स्वयं उसमें उलझता गया। इस समय उनकी क्या दशा होगी इसका अनुमान पाठकगण स्वयं ही लगा सकते हैं। युद्ध में वह बराबर पराजित हो रहा था और अपनी कुटिल नीति में भी जिस पर उसे पूर्ण विश्वास था, विफल हो रहा था। वह निराश फिर

भी न हुआ। यही उसमें गुण था कि वह विपत्तियों से घवड़ाकर यकायक हताश नहीं होता था।

इस वार फिर सम्राट ने एक नई चाल चली। उसने एक विश्वासी चतुर मुगल सरदार को वीर दुर्गादास के पास उसे लोभ में फंसाने के लिये भेजा। उपहार स्वरूप उसने दुर्गादास के लिये ४०,००० मोहरें भेजीं। जिस समय वह मुगल सरदार दुर्गादास के पास पहुँचा उस समय अकवर भी वहीं उपस्थित था तथा अन्य कुछ राजपूत वीर भी वहां वैठे हुये किसी समस्या पर गंभीरता पूर्वक विचार कर रहे थे। मुगल सरदार ने यथायोग्य अभिवादन करने के पश्चात दुर्गादास से विनम्रता पूर्वक निवेदन किया—

"वीर राठौर सरदार! सम्राट ने आपको सलाम कहा है और उपहार स्वरूप अत्यन्त स्नेह पूर्वक चालीस हजार अशर्फियाँ आपके लिये भेजी हैं। सम्राट आपके सद्गुणों पर अनुरक्त हैं और सदैव मुक्त कण्ठ से आपकी प्रशसा करते रहते हैं। उनकी इच्छा वास्तव में यही है कि वह आपसे सद्व्यवहार वनाये रक्खें। वह आपसे युद्ध करना नहीं चाहते। जो कुछ अब तक हुआ वह सव राजनैतिक कारणों से हुआ है अन्यथा उनकी इच्छा ऐसी न थी। वीती हुई वातों को भूल जाइये और सम्राट से मैत्री सम्वन्ध कर लीजिये। वह सहर्ष मारवाड़ को एक स्वतन्त्र राज्य घोषित कर देंगे और हिन्दू प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न देकर दुःख निवारण की चेष्टा करेंगे। आप शहजादा साहव को मेरे साथ भेज दीजिये। सम्राट इनके वियोग मे वहुत दुखी हो रहे हैं और प्रतिक्षण इन्हीं की याद में व्याकुल रहते हैं। शहजादा साहव पर सम्राट का आरंभ से ही असीम अनुराग है और उनकी यह इच्छा है कि युवराज होने के कारण इन्हीं

को राज्यभार सम्हला कर स्वयं भगवत् भजन में अपना शेष जीवन व्यतीत करें। निरंतर युद्ध कार्यों में व्यस्त रहने से उन्हें राज्य कार्य एक भार प्रतीत होने लगा है और संसार से उन्हें विरक्ति सी हो गई है।"

दुर्गादास ने कहा—"मुगल सरदार! हम सम्राट के विचारों का स्वागत करते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं। जो उपहार उन्होंने हमारे लिये भेजा है हम उसे सादर ग्रहण करते हैं। हमें यह जानकर हर्ष होता है कि सम्राट को भगवान ने सद्‌बुद्धि प्रदान की है और वह उसका सदुपयोग करने की चेष्टा कर रहे हैं। सुवह का भूला यदि शाम को घर आजाये तो वह भूला हुआ नहीं कहलाता। परन्तु बुरा न मानना सरदार यदि मैं तुम से यह कहूँ कि सम्राट की इन बातों पर किस प्रकार विश्वास कर लिया जाये जब कि उन्होंने सदैव राजपूतों के साथ धोखा ही किया है। शहजादा अकबर इस समय हमारे शरणागत हैं और इनकी रक्षा का भार मुझ पर है अतः मैं उस समय तक इन्हें वापस नहीं भेज सकता जब तक या तो स्वयं इनकी इच्छा को मैं मालूम न कर लूं और या मुझे स्वयं सम्राट पर पूर्ण विश्वास न हो जाये।"

मुगल सरदार ने तीर खाली जाते देखकर कहा—"राठौर सरदार! अविश्वास करने की कोई बात नहीं है। मनुष्य के भाव व विचार परिवर्तित होते रहते हैं। मेरा निजी विचार तो यह है कि इस समय स्वर्ण अवसर है और आपको न चूकना चाहिये। अवसर से उचित लाभ उठाना ही बुद्धिमानों की सफल नीति है। सम्भव है यदि आपने सम्राट की बात न मानी तो उनके भाव फिर परिवर्तित हो जायें और मारवाड़ प्रदेश ही नहीं समस्त राजस्थान प्रान्त को एक घोर संकट का सामना करना

पड़े। सम्राट की प्रचण्ड क्रोधाग्नि से सारी राजपूत जाति के अहित होने की सम्भावना हो जायेगी। मुगलों की विशाल सेना से मुट्ठी भर राजपूत कब तक युद्ध करके विजय प्राप्त कर सकेंगे? वीर सरदार! आप महान् वीर होने के अतिरिक्त बुद्धिमान व नीतिवान भी हैं। इसीलिये मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि देश जाति के हित के लिये आप सम्राट की बात मान कर उनसे सन्धि करलें अन्यथा इसका परिणाम कितना भयंकर होगा इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।"।

मुगल सरदार ने सोचा था कि कदाचित् प्रलोभन के साथ ही कुछ धमकी देना भी उचित होगा और दुर्गादास व अन्य राजपूत गण उसकी इन बातों में आ जावेंगे किन्तु इसका प्रभाव विपरीत ही हुआ। धमकियों से भला वीर राजपूत सरदार व निर्भीक दुर्गादास कब भयभीत होने वाले थे। अकबर बड़े ध्यान से इन सब बातों को सुन रहा था। उसने मन में विचार किया कि उसके कारण ही राजपूतों की जाति और स्वतन्त्रता पर भयंकर आघात होने जा रहा है। वह ही इस भावी संकट का मूल कारण है। तब क्यों न वह इन लोगों की रक्षा करके महान यश का भागी बने। राजपूतों ने संकट के समय उसकी अपार सहायता की है तो वह भी क्यों न ऐसे संकट के कुअवसर पर उनकी सहायता करे। वह अपने ही कारण सारे प्रदेश को सम्राट की कोपानल में भस्म करके सुखी नहीं हो सकता। अगणित व्यक्तियों की हत्या कराके वह अपना अकेला जीवन बनाये रखकर क्या करेगा? यदि इस समय वह अपने प्राणों का मोह छोड़ दे और राजपूतों के हित के लिये स्वयम् अपना बलिदान कर दे तो निश्चय ही उसे सच्चा सुख प्राप्त हो सकेगा। यह सोचकर उसने स्वयम् मुगल सरदार से कहा—

"मैं कदापि यह सहन नहीं कर सकता कि मेरे कारण सारी राजपूत जाति पर संकट आये। राजपूतों ने जो उपकार मेरे साथ किया है उसका ऋण मैं कभी नही चुका सकता। मैं उन्हें सम्राट के कोप का शिकार नहीं बनने दूंगा। राजपूतों की इच्छा से नहीं मैं स्वयम् अपनी इच्छा से तुम्हारे साथ सम्राट के पास चलता हूँ। वहा जाकर मैं राजपूतों के शौर्य का गुणगान करूंगा और अवसर आने पर उनके हितार्थ अपने प्राणों का उत्सर्ग करने में अपना परम सौभाग्य समझूंगा। मैं विशाल मुगल साम्राज्य के अधीश्वर व प्रत्येक सेनानायक से अनुरोध करूंगा कि मुगलों के हित की रक्षा के लिये वे लोग अवश्य ही राजपूतों से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करें। हिन्दू मुसलमान एक होकर ही देश में शान्ति का राज्य स्थापित कर सकते हैं और समस्त संसार के समक्ष यह कह सकते है 'कि हमारा देश सर्वसुख सम्पन्न है, अखण्ड है और सर्वशक्तिमान है।"

दुर्गादास ने शहजादा अकबर को उत्तर देते हुए कहा—"शहजादा साहब! आपके विचार श्लाघनीय हैं किन्तु हम अपने उपकार का प्रतिकार नहीं चाहते। हमने जो कुछ आपके साथ किया है अपना कर्त्तव्य समझकर किया है और हम उसके प्रतिकार की कामना नहीं रखते। सच्चे राजपूत वीर अपने वचन से विमुख होना नहीं जानते। हमने आपकी रक्षा का भार लिया है और अब लोभ में आकर अपने आदर्श से हीन होते हुये हम आपको संकट में डालना नहीं चाहते। आप निर्भीक होकर हमारे साथ ही रहिये। हमने अपने जीवन का अधिकांश भाग संकटों का सामना करते ही व्यतीत कर दिया है और अब शेष जीवन भी किसी प्रकार बिता देंगे।"

अकबर से कहने के पश्चात दुर्गादास ने मुगल सरदार को सम्बोधित करते हुये कहा—'खां साहब! आप सम्राट के दूत

वनकर यहां आये हैं और हमारे अतिथि के समान हैं अतः हमें आपसे विशेष तो कुछ नहीं कहना है और न इस विषय में विस्तृत रूप से आपके द्वारा हम सुनना ही चाहते हैं किन्तु हम आपको यह बता देना उचित समझते हैं कि जिस प्रकार सम्राट की कपट नीति इससे पूर्व असफल हो चुकी है उसी प्रकार उनके फैलाये हुये इस कपट जाल में भी कोई शिकार फंसने न पावेगा। हम इतने मूर्ख नहीं हैं जितना कि उन्होंने समझकर यह जाल फैलाया है। क्या इन चालीस हजार अशर्फियों का प्रलोभन देकर हमें वह पतित बनाने की चेष्टा कर रहे हैं? चालीस हजार अशर्फियाँ तो क्या यदि वह स्वर्ग की सारी सम्पदा भी यहां लाकर डाल दें और सारे भारतवर्ष का साम्राज्य भी हमें प्रदान करने की कृपा करें तोभी हम उनका यह उपचार शहजादा अकवर के वदले में ग्रहण करने में असमर्थ होंगे। राजपूत वीर शरणागत की उपेक्षा करने व अपने प्रण से विचलित होने की अपेक्षा मर जाना उत्तम समझते हैं। हम जन्म से ही कठिनाइयों का सामना करते हुये तलवारों से खेलना सीखे है और हर समय कराल काल से जूझने के लिये कमर कस कर तैयार रहते हैं। सम्राट से सलाम के वदले में हमारा सलाम कहना और यह भी कह देना कि उनका भेजा हुआ उपहार राजपूतों ने सादर ग्रहण किया है। उपहार का निरादर करना अथवा उसका लौटाना उचित न समझ कर यह अधिक उत्तम समझा गया कि वह धन शहजादा अकवर को दे दिया जाये। जो कुछ मैंने कहा है उनसे इसी प्रकार कह देना और उनसे अनुरोध करना कि इस प्रकार की छल नीति का प्रयोग न करके अपना हृदय स्पष्ट व निर्मल रक्खें। राजपूत उनके वल विक्रम से भयभीय नहीं हुये हैं और समर भूमि में उनका स्वागत् करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। निरन्तर विपत्तियों का सामना करते रहने पर भी राजपूतों का

उत्साह अभी पूर्ववत् ही बना हुआ है और उनकी रगों का रक्त अभी पानी नहीं हुआ है।"

मुगल सरदार ने जब वीर राठौर सरदार दुर्गादास के मुख से ऐसा निर्भीकता पूर्ण उत्तर सुना तो उसके हाथों के तोते उड़ गये। उसे यह स्वप्न में भी आशा न थी कि सारा रहस्य खुल जायेगा और सम्राट की अभिलाषाओं पर इस प्रकार पानी फिर जायगा। उसने बार बार दुर्गादास को समझाना चाहा किन्तु वह तो स्वयं ही चतुर एवं अनुभवी थे उनके सामने मुगलों की कोई भी चाल सफल न हो सकी। सम्राट का भेजा हुआ उपहार भी व्यर्थ ही गया और उसे अपमानित भी होना पड़ा। दुर्गादास ने उस धन में से एक पाई भी न ली और सारा धन अकबर को ही दे दिया। यदि दुर्गादास चाहते तो धन हड़पने के अतिरिक्त धन लाने वाले मुगल सरदार को भी बन्दी बना लेते किन्तु उन्होंने औरंगजेब का अनुकरण करना न चाहा और आदर सहित उसे वहाँ से विदा किया। बेचारा मुगल सरदार निराश होकर अपना मुंह लिये सम्राट के पास वापिस चला गया।

औरंगजेब ने तो सोचा था कि उसका यह तीर अवश्य सफल होगा और एक निशाने से दो शिकार मारे जायेंगे किन्तु उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। अकबर से उसे विशेष भय तो न था क्योंकि वह यह जानता था कि वह विलासी और सुख-भोगी है अतः वह राजपूतों के लिये विशेष सहायक सिद्ध न हो सकेगा किन्तु उसके पुत्र का हाथ से निकल कर शत्रुओं के साथ मिल जाना कम अपमान जनक भी तो न था। इसके अतिरिक्त 'घर का भेदी लंका ढाये' वाली कहावत भी विचारणीय थी, यद्यपि उसके पास ऐसे भेदी व्यक्तियों की कमी न थी जो राजपूतों से विमुख होकर लोभ वश या अन्य

कारणों से उससे जा मिले थे और उसे हर प्रकार की सहायता प्रदान कर रहे थे। वास्तव में ऐसे ही पतित व्यक्तियों ने सुख समृद्धि पूर्ण साम्राज्य को कंटकमय बना दिया था।

अब औरंगजेब के सामने राजपूतों से लड़ने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय न था। उसका हृदय अब भी पवित्र व निर्मल न हुआ था और निरन्तर ठोकरें खाते रहने पर भी उसे होश न हुआ था। वह अभी तक कपट पूर्ण नीति से ही राजपूतों को नीचा दिखाने के स्वप्न देख रहा था। युद्ध के लिये भी वह तैयार था और उसने हर जगह से सेनायें बुलाकर अजमेर में एकत्र करने का प्रबन्ध कर लिया था। उसन प्रान्त के सूबेदार को लिखित आज्ञा भेज दी थी कि शीघ्रातिशीघ्र चुने हुए वीर सैनिक राजपूतों से लड़ने के लिये अजमेर भेज दिये जायें। उसे अपनी विशाल सेना पर पूर्ण विश्वास था। इसमे सदेह नहीं कि जितनी सेना वह चाहता एकत्र कर सकता था। समस्त भारत-वर्ष उसके इशारों पर नाचता था और सर्वत्र उसका ही आतंक छाया हुआ था। मुगल सेना की संख्या जो राजधानी में थी वही काफी थी किन्तु बराबर युद्ध में लगे रहने से उसमें कमी आगई थी और राजधानी की रक्षा के लिये भी सेना सुरक्षित रखना आवश्यक था।

कहां इतने बड़े साम्राज्य का एक मात्र अधीश्वर और उसकी अपार सेना, और कहां एक राठौर सरदार और मुट्ठी भर राजपूत जो पहाड़ियों मे छुपकर जीवन व्यतीत कर रहे थे। राजपूतों के पास सेना के अतिरिक्त धन का भी काफी अभाव था किन्तु मेवाड़ से व अन्य छोटे छोटे राज्यों से उन्हें कुछ सहायता समय समय पर प्राप्त हो रही थी। मेवाड़ तो इस समय मारवाड़ के के साथ कंधा भिड़ा कर लड़ रहा था। यह प्रश्न केवल मारवाड़

प्रदेश की स्वतंत्रता का ही नहीं प्रत्युत समस्त राजपूत जाति की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों के हिन्दू प्रजा का भविष्य भी इससे सम्बन्धित था। राजपूत सत्य व न्याय के सहारे युद्ध कर रहे थे और मुगल अहंकार पूर्ण सत्ता के बल पर मदमत्त हो रहे थे।

मुगल सरदार के जाने के बाद दुर्गादास ने वीर साथियों के साथ बैठकर भविष्य पर विचार करना प्रारम्भ किया। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि औरंगजेब अब युद्ध किये बिना न रहेगा और इस बार समस्त शक्ति बटोर कर मारवाड़ पर धावा बोलेगा। अपने गुप्तचरों से उन्हें यह सूचना प्राप्त हो गई थी कि सम्राट ने देश के विभिन्न प्रान्तों से सेनायें बुलाने का प्रबन्ध कर लिया है और इस सम्बन्ध में सर्वत्र लिखित आज्ञापत्र भेज दिये गये हैं। दुर्गादास को यह भी पता लगा कि इस बार सम्राट ने पूर्ण रूप से तैयार होकर अपने चुने हुये वीरों की विशाल सेना सहित राजपूतों को दबा देने का विचार किया है। वह उसी समय मारवाड़ की ओर बढ़ेगा जब पूरी तैयारियाँ हो जायेंगी। उसने राजस्थान से भी अपनी बिखरी हुई सेनाओं को अपने पास अजमेर ही बुला लिया है ताकि छोटी छोटी लड़ाइयों में मुगल वीर बेमौत ही न मारे जायें और समय पर आ सकें।

दुर्गादास ने भी शीघ्र ही इसका उचित प्रबन्ध करने का विचार किया। विभिन्न प्रान्तों की सीमा पर राजपूत सेनायें भेज दी गईं ताकि वहां से आने वाली सहायता को रोक सकें। मालवा के समीप शामलदास मेड़तिया की अध्यक्षता में कुछ सेना नियुक्त की गई जो दक्षिण से आने वाली मुगल सेना को रोक लें। इस प्रकार चारों ओर पजाब, गुजरात, बगाल, संयुक्त-प्रान्त आदि की सीमा पर समुचित प्रबन्ध कर दिया गया।

अब शहज़ादा अकबर की सुरक्षा का प्रश्न विशेष था। यह एक ऐसी समस्या थी जिसको सुलझाना जितना कठिन था उतना ही आवश्यक भी। चारों ओर दृष्टि दौड़ाने पर सब लोगों ने यही सलाह दी कि अकबर को दक्षिण मे छत्रपति महाराज शिवाजी के पुत्र वीर शम्भाजी के पास भेज दिया जाये। दुर्गादास को भी यह सलाह पसन्द आई क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि दक्षिण ही एक ऐसा प्रदेश हो सकता है जहां सरलता पूर्वक सम्राट की पहुंच नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त वह यह भी जानते थे कि औरंगजेब मराठों से भी अत्यन्त भयभीत रहता है और शम्भाजी कट्टर हिन्दू होते हुये महान वीर भी हैं और औरगजेब का महान शत्रु भी। वह अकबर को अवश्य अपने साथ रखना स्वीकार कर लेगा और उसकी रक्षा का भार भी वही सफलता पूर्वक लेने में समर्थ हो सकेगा। उसके अतिरिक्त समस्त भारत मे कदाचित् ही कोई वीर ऐसा हो जो अकारण ही अकबर के लिये सोते हुए सांप को जगाये और सम्राट का शत्रु बन बैठे। राजपूतों का मराठों से सम्बन्ध भी रह चुका है और स्वर्गीय महाराज जसवन्तसिंह जी छत्रपति महाराज शिवाजी के मित्र भी थे इसलिये राठौर वीरों का कहना मानकर महाराज शम्भाजी अवश्य शहजादा अकबर की रक्षा करेंगे। राजपूतों का विचार यह था कि जब तक मारवाड़ पूर्ण रूप से स्वतन्त्र न हो जाये और युद्ध बन्द न हो उस समय तक ही अकबर वहां रहे तत्पश्चात् देखा जायेगा कि आगे क्या किया जावे। राजपूतों की हार्दिक इच्छा तो यही थी कि सम्राट का पद अकबर को ही दिया जावे क्योकि औरंगजेब भारतवर्ष पर शासन करने के सर्वथा अयोग्य प्रमाणित हो चुका था।

दुर्गादास स्वयं ही अकबर को शंभाजी के पास पहुँचाने के लिये चल दिये क्योकि अन्य कोई व्यक्ति इस कार्य के लिये उपयुक्त न था।

ग्यारहवां परिच्छेद

मारवाड़ विजय

औरंगजेब राजपूतों की नाकेबन्दी से चकित भी हुआ और घबड़ाया भी। जितनी सहायता की आशा किये हुए वह अजमेर में बैठा हुआ सेना का संगठन कर रहा था उसकी वह आशा पूर्ण न हो सकी। यद्यपि जितनी सेना उसके पास थी वह राजपूतों का सामना करने के लिये कम न थी किन्तु फिर भी वह बड़े से बड़ा मोरचा बनाना चाहता था जिससे कि राजपूतों की शक्ति सदा के लिये इस प्रकार दबा दी जाये कि वे फिर खड़े होने का साहस भी न कर सकें।

राजपूत भी शान्त न थे। वे लोग भी युद्ध की तैयारियाँ करने में लगे हुये थे। दुर्गादास की अनुपस्थिति में भी कार्य मे शिथिलता नहीं आने पाई थी। मेवाड़ की सेना भी स्वयम् महाराणा जयसिंह की अध्यक्षता में वहां आ पहुँची थी। महाराणा को जब यह विदित हुआ कि दुर्गादास वहां नहीं है और अकबर को लेकर दक्षिण गये हैं तो उन्होंने समस्त सेना के प्रबन्ध का भार अपने हाथों मे ले लिया। उन्होंने दुर्गादास के भाई जसकरण से कहा—"हम तो समझ रहे थे कि राजपूत सेनाओं ने अजमेर पर आक्रमण कर दिया होगा किन्तु सबको यहाँ देखकर हमें आश्चर्य भी होता है और निराशा भी। आश्चर्य है कि राजपूत अब किस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब कि उनके सामने ऐसा अच्छा सुयोग उपस्थित है। हमें

चाहिये कि औरंगजेब को सेना सुसंगठित करने का अधिक समय न दें। हम अपने विचारों में ही रह कर मुगलों की शक्ति को प्रबल व अजेय बना रहे हैं। अब हमें शीघ्र ही अविलम्ब मुगल सेना पर आक्रमण कर ही देना चाहिये।"

महाराणा की राय सबको पसन्द आई और सेनाएं अजमेर की ओर प्रयाण करने के लिये उत्सुक हो उठीं। महाराणा ने यह भी कहा कि—"इससे भी अच्छा अवसर अजमेर पर आक्रमण करने का उस समय था जबकि सारी मुगल सेना इधर-उधर तितर-बितर थी और सम्राट कुछ सेना सहित अजमेर में ही थे। अब उसने सब सेनायें वहीं बुलवा ली हैं और युद्ध बन्द करवा दिया है। सेना का पूर्ण प्रबन्ध होने पर ही वह युद्ध छेड़ेगा। अभी तक उसके पास मुगल सेना के दो भाग ही पहुँच पाये हैं और शेष सेनायें आ रही हैं जिनके रोकने का प्रबन्ध दुर्गादास जी कर गये हैं। यदि राजपूत उन सेनाओं को रोकने में सफल न भी हुये तो उनके अजमेर पहुँचने में विलम्ब होना तो अवश्यम्भावी है। सहायता आने से पूर्व ही वह मुगलों को पराजित कर देना चाहते हैं।"

दूसरे ही दिन सेनाओ ने अजमेर पर आक्रमणार्थ कूच कर दिया। मुगलों को इस प्रकार अकस्मात् आक्रमण होने की कदापि आशा न थी। राजपूतों ने बड़े वेग से आक्रमण किया और मुगलों को पूर्णतया तैयार होने का अवसर भी न दिया दुर्गादास भी उस समय तक दक्षिण से लौट आये थे और अजमेर आकर अपनी सेना से मिल गये थे। दुर्गादास की उपस्थिति से राजपूत अधिक उत्साहित हो उठे। सम्राट ने घबड़ाकर राजपूतों के सामने सन्धि का प्रस्ताव रख दिया किन्तु मौखिक सन्धि को राजपूतों ने किसी भी शर्त पर स्वीकार न किया क्योंकि

दुर्गादास औरंगजेब की चालों से भली भांति परिचित थे, वास्तव में सम्राट इस बार भी राजपूतों को धोखा देना चाहता था। उसे आशा थी कि यदि कुछ समय के लिये भी यह बला टल जावे तो शेष सेनाओं के अजमेर आने पर पूर्ण तैयारी के साथ युद्ध की घोषणा कर दी जावेगी किन्तु राजपूत उसकी चालाकी को पहले ही भांप गये थे इसलिये उसकी चाल में नहीं आये। अब तो औरंगजेब को युद्ध करने के अतिरिक्त कोई उपाय न सूझ सका।

युद्ध का डंका बज गया। रणभेरियों के गम्भीर भयानक स्वर से दिशायें गूंज उठीं। "अल्लाहो अकबर व हरहर महादेव" के तुमुलनाद से वायु में कम्पन उत्पन्न होगया। रणचण्डी वीभत्सता पूर्वक नाचने लगी। मुगल सम्राट ने अपने सैनिकों को धर्म उपदेश देकर अत्यन्त उत्तेजित करने की चेष्टा की। धर्मान्ध मुगल राजपूत वीरों से जोश के साथ भिड़ गये। रणभूमि के विशाल वक्षस्थल पर शोणित का सागर बहने लगा। असख्य तलवारें बिजली के समान चमक कर वीरों से गले मिल-मिल कर प्रमुदित होने लगी। वीर राजपूतों ने ऐसा रणकौशल प्रदर्शित किया कि मुगल सेना में त्राहि-त्राहि मच गई। लाशों पर लाशें पटने लगीं। आधी से अधिक मुगल सेना नष्ट हो गई। वीर दुर्गादास गाजर मूली की तरह मुगल सेना को काटता हुआ सम्राट की खोज में आगे बढ़ा। सम्राट घबड़ा उठा और इधर-उधर झांकने लगा। कुछ उपाय न देखकर वह अपने प्राणों की रक्षार्थ भाग गया और कोई सुरक्षित स्थान न पाकर किले में जा छुपा। राजपूतों की व्यूह रचना अपूर्व थी अतः मुगल सेना भी अपने सम्राट के भागते ही अन्य किसी ओर न जा सकी और चारों ओर से अरक्षित व निराश होकर किले में ही चली गई जहां औरंगजेब था। किले के द्वार बन्द कर लिये गये और सम्राट

अपनी सेना सहित अन्दर बैठे हुये अपने प्राणों की रक्षा का उपाय सोचने लगे क्योंकि राजपूतों ने किले को भी चारों ओर से घेर लिया था। अब तो औरंगजेब का राजपूतों से सन्धि कर लेना ही उचित प्रतीत हुआ। उसने अविलम्ब सन्धि की शर्तें लिखकर और अपनी मोहर लगाकर सन्धिपत्र अपने पुत्र मोअज्जम के हाथ राजपूतों के पास भेज दिया। दुर्गादास ने सन्धिपत्र पढ़कर सब सरदारों को सुनाया। औरंगजेब ने सन्धि पत्र में लिखा था कि सन्धि होते ही सारी मुगल सेनायें राजस्थान से हटाली जावेंगी और जिन नगरो या राज्यों पर मुगलों ने अधिकार कर लिया है वे राजपूतों को वापस दे दिये जावेंगे। जोधपुर का राज्य स्वतन्त्र होगा और स्वर्गीय महाराज यशवन्तसिंहजी के उत्तराधिकारी राजकुमार अजीतसिंहजी जोधपुर की राजगद्दी पर बैठेंगे। हिन्दुओं के साथ राज्य में अत्याचार न किया जायेगा और न उन पर विशेष कर ही लगाये जावेंगे। हिन्दुओं के मन्दिरों को भी नष्ट भ्रष्ट न किया जावेगा और उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता रहेगी। चित्तौड़ व अन्य समीपवर्ती स्थान जो इस समय मुगलों के अधिकार में हैं महाराणा जयसिंहजी को वापस दे दिये जायेंगे। राजस्थान के नरेशों के साथ सम्राट की मित्रता का व्यवहार रहेगा और संकट के समय परस्पर एक दूसरे की सहायता के लिये तैयार रहेंगे।

सन्धिपत्र स्वीकार कर लिया गया। राजपूतों की विजय दुन्दुभी बजने लगी। मुगलों के झण्डे के स्थान पर राजपूत पताका फहराने लगी। किले का द्वार खोल दिया गया। सब लोग मित्र के समान गले मिले। चारो ओर हर्ष ध्वनि होने लगी। सेनापति दिलेरखां और शहजादा मोअज्जम को पूर्ण रूप से आश्वासन देने पर कि सन्धिपत्र की शर्तों के विषय में मुगलों

की ओर से धोखा न किया जावेगा राजपूतों ने सन्धिपत्र को स्वीकार किया था।

औरंगजेब अपने परिवार व सैन्यदल सहित देहली लौट गया और राजपूत सेनायें भी जोधपुर की ओर जय घोष करती हुई चली गईं। कुछ समय मे ही राजपूतों की विजय का समाचार सारे राजस्थान में पहुँच गया। सब स्थानों पर हर्षोत्सव मनाये गये और मङ्गल गान गाये गये। घर-घर में वीर दुर्गादास की वीरता का यशोगान होने लगा। लोग बादलों की तरह घुमड़ घुमड़ कर राजकुमार अजीतसिंह का राज्याभिषेक देखने के लिये जोधपुर की ओर जाने लगे।

जोधपुर की शोभा ही उस समय अपूर्व थी। विजय प्राप्त करके देश को स्वतन्त्र देखकर प्रजा को जो हर्ष और उत्साह होता है वह अवर्णनीय है और उसका अनुमान स्वयं पाठक ही लगा सकते हैं। प्रजा आनन्द में दीवानी हो रही थी। राज्य में प्रत्येक स्थान अपूर्व ढंग से सजाया गया। सर्वत्र मंगल गान हो रहे थे। समस्त राजस्थान में हर्ष का स्रोत उमड़ रहा था और सारी जनता बेसुध होकर उसमें प्रवाहित हो रही थी। यथा समय शुभ मुहूर्त में राजकुमार अजीतसिंह जी का राज्याभिषेक किया गया। राजकुमार के साथी मित्रगण भील आदि जिनके साथ वह अब तक खेलकर बड़े हुए थे, उन्हें मारवाड़ाधिपति के रूप में राजमुकुट पहिने हुये सोने के सिंहासन पर सुशोभित देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुये।

दुर्गादास ने महाराज अजीतसिंह से कहकर उन राजपूत सरदारों को जिन्होंने मारवाड़ के स्वातन्त्र्य-संग्राम में सहायता दी थी जागीरें इनाम में दिलवाईं। प्रजा में भी निर्धनों व अनाथों की प्रचुर सहायता की गई। वह मुसलमान सेवक

जिसने अपनी जान पर खेल कर अजीतसिंह की प्राण रक्षा की थी, महाराज के साथ रहने लगा और उसका मान सम्मान काफी बढ़ गया। इस हर्ष व उत्साह के अवसर पर महाराणा अजीतसिंह की माता की अनुपस्थिति से अवश्य लोगों को शोक हुआ। महाराणा राजसिंह का देहान्त हो ही चुका था और जोधपुर की महाराणी भी मारवाड़ के स्वतन्त्र होते ही अपने पति के शोक में विह्वल होकर सती होगई थीं।

राजपूत सरदारों को यथोचित सम्मान प्रदान करके यथा-योग्य पद दिये गये। मुगल वीर वहीदखां जिसने राजपूतों की सहायता की थी सेनाध्यक्ष वना दिया गया और उसका विवाह दुर्गादास की अनुमति से वीर कन्या हमीदा के साथ कर दिया गया। दुर्गादास को अभी तक विशेष कार्य करना था। वीरांगना लालवा को भी उचित पुरस्कार देना शेष था। एक दिन बातों ही बातों में दुर्गादास ने वृद्ध राजा महासिंह से कहा—"मैंने लालवा के लिये उचित पुरस्कार की व्यवस्था सोचली है। केवल आपकी सम्मति लेना शेष है।"

महासिंह—"मेरी सम्मति की क्या आवश्यकता है? मुझसे अधिक अधिकार लालवा पर आपका है।"

दुर्गादास—"मेरा विचार तो यह है कि लालवा का विवाह किसी सुयोग्य राजपूत वीर से कर दिया जाये।"

महासिंह—"सुयोग्य वर खोजने का भार भी आप पर ही रहेगा क्योंकि इस कार्य के लिये अधिक उपयुक्त आप ही हैं। हमीदा को भी तो आपने ही ऐसा उपहार प्रदान किया है जो किसी भी प्रकार अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता।"

दुर्गादास—"वर तो पहले ही खोज लिया गया है और आपको कदाचित पता न होगा कि लालवा ने स्वयं ही इस कार्य में हमारी सहायता की है।"

महासिंह—"क्या सचमुच ? मुझे तो इस विषय में कुछ भी पता नहीं।" क्या आप उसका नाम बता सकते हैं ?"

दुर्गादास—"हां क्यों नहीं ? उस वीर का नाम महाराणा जयसिंह है।"

महासिंह—(आश्चर्य से) "महाराणा जयसिंह ?"

दुर्गादास—"जी हां, आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है ?"

महासिंह—"कदाचित् आप हंसी कर रहे हैं। मेवाड़ के महाराणा एक साधारण राजपूत सरदार की कन्या को क्यों अपनायेंगे ? यदि यह सत्य भी हो तो लालवा ने निरसन्देह यह दुस्साहस ही किया है।"

दुर्गादास—"प्रेम बलपूर्वक नहीं किया जाता। इसका संबंध हृदय से होता है। आपको यह जानकर हर्ष होगा कि महाराणा साहब को भी यह सम्बन्ध स्वीकार है।"

महासिंह—यह आपको कैसे मालूम हुआ ?

दुर्गादास—महाराणा जयसिंह भी लालवा से प्रेम करते हैं। दोनों के प्रेम का हाल मुझे भली भाँति विदित हो चुका है और यही कारण है कि मैं इस स्नेह बन्धन को शीघ्र ही दृढ़ करना चाहता हूँ।

महासिंह—मैं इसे अपना सौभाग्य समझूंगा। आप जैसा चाहें करें मुझे इस विषय में कुछ नहीं कहना है।

सब लोग इस सम्बन्ध से प्रसन्न थे। लालवा जैसी अपूर्व लावण्यमयी, सुन्दरी व गुणवती कन्या के लिये महाराणा जयसिंह जैसे वीर व गुणी युवक सर्वदा उपयुक्त थे। इस विषय

में सबसे अधिक हर्ष लालबा के माता-पिता के अतिरिक्त दुर्गादास को था और वही इस विवाह का सारा प्रबन्ध कर रहे थे। दुर्गादास की प्रसन्नता का एक विशेष कारण यह भी था कि यह विवाह राजनैतिक दृष्टि से भी महत्त्व-पूर्ण था। इस विवाह से मारवाड़ और मेवाड़ का परस्पर प्रीति सम्बन्ध बने रहने की आशा थी और यही कारण था कि दुर्गादास ने इस सम्बन्ध के लिये विशेष उत्साह प्रदर्शित किया था।

यथा समय लालबा का विवाह महाराणा जयसिंह से हो गया। विवाह का प्रबन्ध जोधपुर राज्य की ओर से किया गया था और दुर्गादास ने उसमें विशेष रूप से भाग लिया था। दुर्गादास ने विदा के समय लालबा से कहा—'बेटी लालबा! मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि तुम्हारी मनोकामना आज पूर्ण हो गई है। यदि इसमें कोई बाधा उपस्थित हो जाती तो अवश्य ही मारवाड़ विजय की सारी प्रसन्नता का रङ्ग कुछ दूसरा ही होता। परमात्मा की कृपा से परिस्थिति प्रतिकूल न हो सकी। इस सम्बन्ध ने तुम्हारे प्रणय-पाश को ही दृढ़तर नहीं किया है प्रत्युत मारवाड़ और मेवाड़ दोनों राज्यों को परस्पर निकटतम लाने की चेष्टा की है। हमे आशा ही नहीं दृढ़ विश्वास है कि तुम मेवाड़ की महारानी होकर अपने राज्य के हित का ध्यान रखने के साथ ही दोनों राज्यो के मैत्रीपूर्ण व्यवहार को निवाहने की भी पूर्णतया चेष्टा करती रहोगी। भगवान् एकलिंग तुम्हारा कल्याण करें और तुम्हारी भावनाओ को विशुद्ध बनाये रक्खें। जिस प्रकार तुम वीर कन्या के रूप में अपने आदर्श का पालन करती रहीं उसी प्रकार वीर पत्नी तथा राजरानी के रूप में भी तुम अपने कर्त्तव्य पालन का सदैव ध्यान रखना।"

लालबा ने उत्तर दिया—"परमात्मा की कृपा से और आपके आशीर्वाद से मैं अपने कर्त्तव्य का सदैव पालन करती रहूँगी।

जिस प्रकार आपने अब तक मुझ पर स्नेह दृष्टि रक्खी, आगे भी उसी प्रकार अपनी कृपा बनाये रक्खें। जिस समय भी देश को मेरी आवश्यकता प्रतीत हो मैं उसी समय अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को भी तैयार रहूँगी। वह समय अत्यन्त शुभ एवं भाग्यशाली होगा जब मेरा शरीर मारवाड़ अथवा मेवाड़ प्रदेश के कल्याणार्थ अपना अस्तित्व गवाकर बड़भागी कहलाने का अधिकारी कहला सकेगा।"

दुर्गादास के मुख से 'धन्य' निकला और वह लालवा को शुभाशीष देते हुए एक ओर चले गये।

बारहवां परिच्छेद

'अजीतसिंह की कृतघ्नता'

रजिया मारवाड़ में ही दुर्गादास के पास थी। वह दुर्गादास के साथ पूर्ण सुखी थी और उसे किसी प्रकार का कष्ट न था। बाल्यकाल से युद्ध क्षेत्र में ही जीवन व्यतीत होने के कारण उसका स्वभाव महलों में रहने वाली राजकुमारियों से कुछ भिन्न था। धार्मिकता की दृष्टि से वह अपने पिता के समान थी और उसके विचार अत्यन्त शुद्ध व उदार थे।

वह अब नवयौवन प्राप्त गम्भीर बालिका हो चुकी थी। उसके यौवनोद्यान में सौरभमय वसन्त का आगमन हो गया था। नेत्रों की चपलता मादकता में परिणित हो गई थी। सौन्दर्य

की सरलता ने लावण्यता व मनमोहक अल्हड़ता का रूप धारण कर लिया था। सुन्दर नवयुवक मारवाड़ नरेश महाराज अजीतसिंह के हृदय पर रजिया के अनुपम सौन्दर्य का प्रभाव पड़े बिना न रह सका। रजिया स्वयं भी उनकी ओर आकर्षित हो चुकी थी। हृदय को हृदय से राहत हुआ करती है। दोनों एक दूसरे को चाहने लगे। राजभवन में या उद्यान में जहां कहीं दोनों मिलते घण्टों प्रेमालाप किया करते। उन दिनों दुर्गादास वहां नहीं थे। वह किसी कार्यवश जोधपुर से बाहर गये हुये थे। उनकी उपस्थिति में संभवतया ऐसा न होता क्योंकि वह इस विषय में काफी सतर्क रहा करते थे।

राज काज महाराज अजीतसिंह ही करते थे किन्तु राज्य की बागडोर महाराज के राज्याभिषेक के समय से ही दुर्गादास के हाथ में थी। प्रजा भी दुर्गादास के शासन प्रबन्ध से बहुत सुखी थी। दुर्गादास ने ऐसा उत्तम प्रबन्ध किया था कि राज्य में चारों ओर चैन की वंशी बज रही थी। राजस्थान के अन्य राज्यों से भी जोधपुर का मित्रता का सम्बन्ध बना हुआ था। विद्रोह का तो कहीं नाम भी न था। दुर्गादास की वीरता की धाक ऐसी जमी हुई थी कि किसी को जोधपुर की ओर आंख उठाने का साहस ही नहीं होता था।

जब महाराज अजीतसिंह बड़े हो गये और राजकार्य भली भांति समझने लगे तो दुर्गादास ने शासन का भार महाराज को ही सौंप दिया और वह स्वयं प्रधान मन्त्री वा प्रमुख परामर्शदाता के रूप में उनके पास रहने लगे। उन्हीं दिनों जब दुर्गादास शासन कार्य सम्हाले हुये थे उन्होंने अकबर को अपने पास वापस बुलाने की भी चेष्टा की किन्तु पहले तो शम्भाजी ने उन्हें न भेजना चाहा और कुछ समय पश्चात् शम्भाजी का वध हो

गया और अकबर के मक्का मदीने जाने का समाचार भी दुर्गादास को ज्ञात हो गया। महाराज शम्भाजी के मारे जाने के समाचार से दुर्गादास को भी कम दुःख नहीं हुआ और उतना ही दुःख उन्हें अकबर के चले जाने का भी हुआ। रजिया पिता की याद में व्याकुल होकर रोने लगी किन्तु दुर्गादास ने उसे पूर्ण आश्वासन देकर शान्त किया। वह उसे अपनी पुत्री के समान मान कर बड़े स्नेह से रखते थे। उनका स्नेह प्राप्त करके वह अपने पिता को भूलने लगी और वहीं स्थाई रूप से रहने लगी।

महाराज अजीतसिंह के शासन-भार ग्रहण करने के कुछ काल पश्चात् ही यह समाचार प्राप्त हुआ कि औरंगजेब भी दक्षिण में मर गया। औरंगजेब के बाद मोअज्जम भारत का सम्राट बना। मोअज्जम अपने पिता के समान कठोर कुटिल नीति वाला न था। दक्षिण का युद्ध स्थगित हो गया और मुगल सेना वापस दिल्ली चली गई। मोअज्जम ने दुर्गादास के साथ मित्रता का व्यवहार बनाये रक्खा और सन्धि को भंग करना उचित न समझा। उसने दुर्गादास से रजिया को वापस देहली भेजने का अवश्य अनुरोध किया। दुर्गादास ने यह स्वीकार भी कर लिया और यद्यपि रजिया की हार्दिक इच्छा वापस जाने की न थी तथापि उसे मारवाड़ छोड़कर सदा के लिये वहां से जाना पड़ा। जाते समय वह अपने प्रेमी अजीतसिंह से भी न मिल सकी। उसकी अभिलाषाये कुचल गईं और उसकी हरी भरी आशाओं पर तुषारपात हो गया। वह दुर्गादास से अपने मन की बात न कह सकी और अपने हार्दिक उद्गारों को अपने हृदय में ही दबाये हुये वापस चली गई।

जिसके मित्र होते हैं उसके शत्रु भी अनेकों हो जाते हैं। मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु उसका यश भी हो जाया करता है।

दुर्गादास के गुण ही उनके शत्रु बनने लगे। महाराज अजीतसिंह के चाटुकार सभासद अपने स्वार्थ के कारण महाराज को दुर्गादास के विरुद्ध भड़काने लगे। महाराज में विचार शक्ति का सर्वथा अभाव था। वह शीघ्र ही अपने चापलूस मन्त्रियों के बहकाये में आ जाते थे। कुछ लोग बचपन से ही उनके साथ रहे थे और उनका राजदरबार में भी मान बढ़ गया था। दुर्गादास के कारण उनका स्वार्थ सिद्ध न हो पाता था अतः वे लोग चाहते थे कि दुर्गादास की ओर से महाराज का मन फिर जाये। इस श्रेणी के लोगों का एक दल हो गया जो पूर्ण रूप से सुसंगठित होकर दुर्गादास के विरुद्ध नये-नये जाल रचने लगा। उस दल के व्यक्तियों ने महाराज के कान भरना आरम्भ कर दिये। रजिया के विषय में लोगों को अच्छा सुयोग हाथ लगा। उन्होंने महाराज को भड़काना प्रारम्भ किया। स्वयं महाराज अजीतसिंह रजिया के प्रति अत्यधिक अनुरक्त थे। उन्होंने दुर्गादास को बुलाया और कहा—"दुर्गादास जी! रजिया कहां है?"

दुर्गादास—मैंने रजिया को सुरक्षित रूप से मुगल सम्राट के पास वापिस भेज दिया है।

अजीतसिंह—क्या कहा? रजिया मुगलों के पास चली गई?

दुर्गादास—हां महाराज! रजिया के बदले मैंने मारवाड़ राज्य के लिये बिना युद्ध किये ही तीन नगर प्राप्त कर लिये हैं। राजनैतिक दृष्टि से यह कार्य हमारे राज्य के लिये शुभ एवम् हितकर भी हुआ है।

अजीतसिंह—किन्तु यह सब कुछ मेरी अनुमति लिये बिना ही किया गया। क्या मैं मारवाड़ का शासक होकर भी अपने राज्य कार्य के विषय में अनभिज्ञ रक्खा जाता हूँ? क्या सामन्तगण मुझे अपने हाथों की कठपुतली बनाकर रखना चाहते हैं?

क्या मेरी आड़ लेकर अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये ही मुझे महाराज बनाया गया है ?

दुर्गादास—महाराज ! आप यह क्या कह रहे हैं ? कदाचित् किसी मानसिक वेदना ने आपको अत्यन्त व्याकुल कर दिया है और इसलिये आपने उचित अनुचित का भी विचार करना छोड़ दिया है ?

अजीतसिंह—दुर्गादास जी ! रजिया के विषय में क्या मुझे आपसे अनुशासन भङ्ग करने का कारण नहीं पूछना चाहिये ? क्या मेरे इस सिंहासन पर होते हुये आप इतने स्वतन्त्र हो गये हैं कि बिना मेरी आज्ञा लिये आप मनमानी करते रहें और मैं शान्त बैठा हुआ जड़मूर्ति की भांति आपके कारनामों को देखता हुआ सहनशीलता धारण किये रहूँ।

दुर्गादास—इस सम्बन्ध आपका कुपित होना व्यर्थ है। मैंने जो कुछ किया राज्य के हित के लिये किया है और आगे भी वही करता रहूंगा। रजिया के विषय में मुझे आपसे अनुमति अथवा आज्ञा लेने की कोई आवश्यकता प्रतीत न हुई क्योंकि वह मेरे अधिकार में थी और उसकी रक्षा का भार मुझ पर था आप पर नहीं। शहजादा अकबर यहाँ से जाते समय रजिया को मेरे हाथ में दे गये थे और मुझे ही उसके भविष्य के विषय में विचार करना था। मैं यह भी भली भाँति जानता था कि यदि आपकी आज्ञा ली गई तो कभी न मिल सकेगी और इस प्रकार मुझे अपने वचन से विमुख होना पड़ेगा।

अजीतसिंह—आपको मुझ पर विश्वास है ?

दुर्गादास—इसका भी एक विशेष कारण है जो मुझे कुछ काल पूर्व ही ज्ञात हुआ है।

अजीतसिंह—वह क्या ?

दुर्गादास—वह यह कि आप रजिया से प्रेम करने लग गये थे। मुझे यह बात सप्रमाण ज्ञात हो गई थी कि आप दोनों परस्पर प्रेम पाश में बधे हुये थे। आपकी यह प्रेम लीला इस देश के लिये हितकर न थी। आपका विवाह उससे होना सम्भव न था। रजिया के यहाँ रहते हुए यह भी कदाचित् सम्भव न होता कि आप दोनों इस प्रेमपाश से मुक्त हो पाते।

अजीतसिंह—यह अवश्य कोई कुचक्र है और इसमें कुछ रहस्य भी निश्चित ही है। मुझे आपसे ऐसी आशा कभी न थी दुर्गादास जी।

दुर्गादास—कुचक्र और रहस्य ? आप यह क्या कह रहे हैं महाराज ? दुर्गादास प्राण रहते कभी विश्वासघात नहीं करेगा। मारवाड़ नरेश के हित के लिये यह सेवक अपना शीश भी उतार कर समर्पित कर सकता है।

अजीतसिंह—मैं यह कैसे विश्वास कर लूं कि यह कुचक्र नहीं जबकि मेरी आज्ञा के बिना ही आपने तीन नगरों का लोभ दिखाकर रजिया को वापस भेज दिया। यही नहीं प्रत्युत मैं यह निरन्तर देखता आ रहा हूँ कि आजकल आप मेरे वास्तविक हित की ओर उदासीन रहते हैं। आप अन्य राज्यों से अपना सम्बन्ध बढ़ाकर मेरे मार्ग में बाधायें उपस्थित करने की चेष्टा कर रहे हैं। मैं यह कदापि सहन नहीं कर सकता। यह आपका गुरुतर अपराध क्षमा करने योग्य नहीं है और मुझे खेद है कि इसका दण्ड भुगतना ही होगा।

दुर्गादास—यदि महाराज की ऐसी ही इच्छा है तो मैं कठोर से कठोर दण्ड भुगतने के लिये भी तैयार हूँ।

अजीतसिंह—आपके लिये यही दण्ड पर्याप्त है कि आप आज ही इस राज्य को सदा के लिये छोड़ दें।

दुर्गादास—जो आज्ञा महाराज।

यह कहकर स्वाभिमानी दुर्गादास वहां एक क्षण भी न ठहर सके और तत्काल वहां से चले गये। उनके हृदय को गहरी ठेस लगी। उनकी हार्दिक वेदना का अनुमान लगाना सरल नहीं है। अपनी मातृ-भूमि को सदा के लिये छोड़ते हुये उनका हृदय फटा जा रहा था। महाराज की इस कठोर आज्ञा को सुनकर दरवार में सन्नाटा छागया। उस समय वहां महाराज के चापलूस सामन्तगण ही वैठे हुये थे जो महाराज की प्रत्येक वात में हां में हां मिलाना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे इसलिये दुर्गादास का पक्ष ग्रहण करते हुये किसी ने कुछ न कहा और सब मौन धारण किये हुये ही वैठे रहे। कुछ क्षण अनन्तर ही वहीदखां ने प्रवेश किया और कहा—"महाराज ! क्या यह सत्य है कि दुर्गादास जी मारवाड़ छोड़कर सदा के लिये यहाँ से जा रहे हैं ?"

अजीतसिंह—हां यह सत्य है और मेरी आज्ञा से ही यह हो रहा है। दुर्गादास को अक्षम्य अपराध के लिये यही दण्ड दिया गया है। राजाज्ञा की उपेक्षा करने वाले चाहे कोई भी हों अवश्य ही दण्ड पाने के अधिकारी हैं।

वहीदखां—मैंने सब कुछ सुन लिया है महाराज ! मेरी तुच्छ सम्मति तो यह है कि आप इस विषय में शीघ्रता न करें और अपने निर्णय पर पुनः विचार करें। मैं करवद्ध प्रार्थना करता हूँ कि दुर्गादास जसे रत्न को गवाकर भयंकर भूल न करें। मारवाड़ का वच्चा-वच्चा उनकी राजभक्ति से परिचित है और उनके त्याग व वलिदान पर मुग्ध होकर उन पर प्राण देता है।

अजीतसिंह—मैंने सब कुछ विचार लिया है और इस विषय में मुझे किसी की सम्मति की आवश्यकता नहीं।

वहीदखां—शोक ! महाशोक !! जिस वीर ने मारवाड़ राज्य के हित के लिये अपना सर्वस्व गंवा दिया और राज्य परिवार की रक्षा के लिये अपने प्राणों की चिन्ता न की उसे अब वृद्धा-

वस्था में कलंकित करके देश निर्वासन का दण्ड दिया जा रहा है। अवश्य ही महाराज को भ्रम हुआ है और किसी स्वार्थी दुष्ट व्यक्ति ने महाराज को धोखा दिया है। यदि दुर्गादास विश्वासघात ही करते तो क्या आज यह दिन........।

अजीतसिंह—बस वहीदखां अपनी सीमा से आगे बढ़ने का प्रयास न करो। यदि तुम्हें दुर्गादास से सहानुभूति है तो तुम भी सपरिवार दुर्गादास के साथ जा सकते हो। मैं ऐसे विश्वासघाती व्यक्तियों को अपने राज्य मे स्थान नहीं दे सकता।

वहीदखां—मैंने पहले ही यह निर्णय कर लिया था। मेरा रोम-रोम दुर्गादास जी के प्रति श्रद्धा व कृतज्ञता से परिपूर्ण है अतः उन्हें इस समय वृद्धावस्था में मैं कदापि नहीं छोड़ सकता।

यह कहकर वहीदखां उसी समय वहां से चला गया। दुर्गादास को जब यह ज्ञात हुआ कि उनके साथ ही वहीदखां को भी सपरिवार देश निर्वासन का दण्ड दिया गया है तो इन्होंने वहीदखां को बुलाकर उसे बहुत समझाया किन्तु वह न माना। वहीदखां ने स्पष्ट कह दिया कि "ऐसे अन्यायी राजा के राज्य मे रहना मैं उचित नहीं समझता। इन्हीं कारणों से तो मैंने मुगल सेना से अपना सम्बन्ध विच्छेद किया था और यदि ऐसी परिस्थितियां यहां उत्पन्न हो जाती हैं तो मेरा निर्वाह यहां किस प्रकार हो सकता है ? जो राजा भले-बुरे की पहिचान नहीं कर सकता तथा उचित अनुचित पर ध्यान न देकर मन माने कार्य करता है उसके साथी वही हो सकते है जो स्वार्थी और चाटुकार हों।" दुर्गादास अधिक कुछ न कह सके। वहीदखां उन्हीं के साथ रहकर पुत्र की भांति उनकी सेवा करना चाहता था। दुर्गादास को उसकी बात स्वीकार करनी ही पड़ी।

दुर्गादास ने स्थिति पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया। जिस पौधे को बड़े परिश्रम से सींचकर बड़ा किया था और जिस

फुलवारी की पूर्ण रक्षा करके उसे हरी भरी बनाया था अब उसी का पतन हो रहा है। वह अपने नेत्रों के सामने इस भयकर व आश्चर्य्यजनक परिवर्तन को देखकर अत्यन्त विकल हो उठे। वह अपने स्वामी स्वर्गीय महाराज यशवन्तसिंह के सच्चे सेवक थे और यही कारण था कि उन्हें महाराज अजीतसिंह से अत्यन्त प्रेम था। वह अपने होते हुये महाराज को अवनति के पथ की ओर अग्रसर होते हुये नही देख सकते थे किन्तु अब उनका वश ही क्या था। महाराज को उनके विरुद्ध बना दिया गया था दुर्गादास ने कई बार महाराज को समझाने की असफल चेष्टा की। राज्य में अराजकता फैलने लगी। प्रजा भी अप्रसन्न रहकर निन्दा करने लगी। जो प्रजा महाराज के दर्शनों के लिये आतुर रहा करती थी वही अब महाराज को देखकर घृणा से मुंह फेर लेती थी। महाराज राग-रंग में मस्त रहने लगे। राज काज में शिथिलता आने लगी। अन्याय का बोलबाला हो गया और दुर्गादास की आत्मा क्रन्दन करने लगी। दुर्गादास ने अपने परिवार को उदयपुर भेज दिया और स्वयं अकेले वहीं रहकर मारवाड़ राज्य का भविष्य देखने की प्रतीक्षा करने लगे। दुर्गादास ने अपनी नीति का त्याग नहीं किया। वह प्रायः नित्य ही महाराज अजीतसिंह को समझाया करते थे और उन्हें सत्पथ पर लाने की चेष्टा किया करते थे। महाराज के कार्यों की कटु-आलोचना करने में वह सदैव अपनी स्वाभाविक निर्भीकता व स्पष्टवादिता का परिचय देते थे।

अन्त में वह समय भी आ गया जब उन्हें देशनिर्वासन का दण्ड मिला और महाराज को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। महाराज शासक होते हुये भी दुर्गादास से भयभीत रहा करते थे। उन्होंने दुर्गादास को दण्ड देने में अपनी सारी शक्तियां बटोर कर अपने अन्तिम साहस का परिचय दिया था। इससे

अधिक साहसिक कार्य कदाचित् वह कर भी नहीं सकते थे। अब उनके मार्ग में कोई बाधक न था जो उनकी स्वेच्छाचारिता को रोक स

प्रजा को दुर्गादास के चले जाने के विषय में उस समय पूर्ण समाचार मिले जब वह वहीदखां आदि को लेकर सदा के लिये मारवाड़ छोड़ गये थे। प्रजा का असन्तोष भड़क उठा। अपने पूज्य वृद्ध तपस्वी वीर सरदार के वियोग में प्रजाजन अश्रुपात करने लगे। महाराज के भय आतंक से प्रत्यक्ष रूप में कोई कुछ न कर सका किन्तु हृदय सबके जल रहे थे।

मारवाड़ प्रदेश की सीमा को पार करते हुये दुर्गादास के नेत्र भर आये। उन्होंने एक बार जी भर कर अपनी जन्मभूमि की ओर दृष्टिपात किया और उनके लोचनों से जल की धारा वह निकली। कुछ क्षण के लिये वह बेसुध हो गये और उनके मुख से एक शब्द भी न निकल सका। थोड़ी देर बाद उन्होंने अपनी जननी जन्मभूमि को शीश झुकाकर प्रणाम किया और रजकण मस्तक पर धारण करते हुये कहा—"मातेश्वरी! तेरा यह सेवक आज सदा के लिये तुझसे विदा मांग रहा है। तेरे चरणों में ही रहकर प्राण विसर्जन करने की अन्तिम इच्छा पूर्ण न हो सकी। तुझे बन्धन-मुक्त करके मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया यही मुझे सन्तोष है किन्तु आज मुझे तेरा भविष्य पुनः अन्धकारमय दृष्टिगोचर हो रहा है, यह सब देखते हुये भी विवशता का भार लिये हुये मैं तुझे छोड़ कर जा रहा हूँ। मां! मैं निरपराध हूँ, निर्दोष हूँ और हर प्रकार से विवश हूँ किन्तु यह न समझना कि मैं तुझे सर्वथा भूल जाऊंगा। मैं कहीं भी रहूँ तेरा अनुराग मेरे हृदय से नहीं निकल सकता! दूर रहकर भी तेरी करुण पुकार अवश्य तेरे पुत्र का खून खौला देगी और

तेरे एक एक आंसू के वदले तेरा पुत्र लहू की नदियां वहाने के लिये तैयार रहेगा। मां! मुझे अपने निवासित होने का दुःख नहीं है। दुःख है तो केवल यही कि मैं अपना अन्तिम समय तेरी गोद में वैठकर सुख से व्यतीत न कर सका। कदाचित् मैं इतना भाग्यशाली नहीं हूँ कि तेरे चरणों में ही अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकूं। मुझे महाराज अजीतसिंह के प्रति क्रोध या द्वेष नहीं है। जो कुछ उन्होंने किया है अज्ञानतावश लोगों के बहकाने में आकर किया है। वह अभी नवयुवक है, वालक है, अबोध है और संसार के छल-छन्द से अपरिचित है। उन्हें क्षमा करना मां! उन पर कृपा वनाये रखना। वह मेरे स्वामी हैं। उनकी आज्ञा पालन करना मेरा धर्म है। उनका हर समय शुभ-चिन्तन करना मेरा कर्त्तव्य है।"

दुर्गादास के आन्तरिक उद्गार दृगधार वनकर निकल पड़े। वहीदखां व हमीदा ने दुर्गादास का वास्तविक रूप अवलोकन किया। उनके मस्तक श्रद्धा से झुक गये और हृदय गद्गद् हो गये। ऐसा राजभक्त और देशभक्त विरला ही कोई होगा। चलते चलते सब लोग यथा समय उदयपुर पहुँचे। समाचार प्राप्त होते ही महाराणा जयसिंह स्वयं स्वागतार्थ आये और सबको अत्यन्त सम्मान व आदर सहित राजभवन में ले गये। महाराणी लखवा भी उन सबको वहां देखकर अत्यन्त मुदित हुईं।

वहीदखां के मुख से सारा हाल सुनकर महाराणा व महारानी को अपार दुःख हुआ। महाराणा जयसिंह तो क्रोध से कांपने लगे और उनके भुजदण्ड फड़क उठे। वह कुपित स्वर से कहने लगे—"अजीतसिंह का साहस इतना वढ़ गया कि अपने रक्षक पूज्य पिता तुल्य सरदार को देश-निर्वासन का दण्ड दे

दिया ? विदित होता है कि उसका दुर्भाग्य उदय हो रहा है और उसके दुर्दिन निकट आ रहे है। हमने मारवाड़ राज्य से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित किया है किन्तु हम उसे ऐसी दशा मे स्थिर नहीं रख सकते। मेवाड़ एक महापुरुष देशभक्त के अपमान का बदला मारवाड़ से अवश्य लेगा।"

दुर्गादास ने महाराणा को शान्त करते हुये निवेदन किया—'महाराणा साहब ! शान्त होइये ! मेरे लिये मेवाड़ तथा मारवाड़ दोनों राज्यों के शासक पूज्य हैं। मैं जैसा ही उनका सेवक हूँ वैसे ही आपका भी हूँ। मैं अपने जीवन में यह देखना नही चाहता कि जिस मित्रता के सम्बन्ध को मैंने दृढ़ किया था उसे मैं अपने स्वार्थ के लिये तोड़ दूं। यहां मेरे आगमन का अभिप्राय भी यह नहीं है कि दोनों राज्य परस्पर एक दूसरे के शत्रु हो जायें। महाराजा अजीतसिंह अभी नादान है। जो कुछ उन्होने अज्ञानता वश किया है समय आने पर स्वय ही उन्हें अपने कृत्य पर पश्चात्ताप होगा। बदला लेना मनुष्य का काम नहीं परमात्मा का है।"

महाराणा बोले—'महाराजा अजीतसिंह अब ऐसे बालक नहीं हैं जो अपना भला-बुरा पहचानने में असमर्थ हों। कृतघ्नता का फल उन्हें प्राप्त होना ही चाहिये। उनकी आंखें खोलने के लिये हमें युद्ध करना ही होगा।"

दुर्गादास ने कहा—'किन्तु मैं ऐसा न होने दूंगा। अपने स्वामी व अपनी जन्मभूमि पर आघात होते मैं न देख सकूंगा। अपने स्वार्थ के लिये अगणित वीरों का हनन होते हुये मुझसे न देखा जायेगा। ऐसा होने से पूर्व ही मेरे इस शरीर का

अस्तित्व न रह सकेगा। महाराणा अपना विचार बदल कर मुझे अनुगृहीत करें।"

दुर्गादास का अनुपम आदर्श देखकर महाराणा व महाराणी दोनों ही आश्चर्य चकित हो उनका मुख देखने लगे और अनायास उनके मुख से 'धन्य' निकल पड़ा। महाराणा जयसिंह विवश हो गये और उन्होंने अपना विचार बदल दिया किन्तु उनके भाव महाराज अजीतसिंह के प्रति शुद्ध न थे। उन्हें महाराज से घृणा हो गई और मैत्री सम्बन्ध रखना उनके लिये सम्भव न रहा। महाराणा दम्पति दुर्गादास को भली भांति पहचानते थे कि वह किस श्रेणी के व्यक्ति थे और उनका क्या स्थान होना चाहिये था।

महाराणा ने दुर्गादास से कहा—'आपकी इच्छा के प्रतिकूल मैं युद्ध करना नही चाहता। आप हमारे साथ ही रहिये और मेवाड़ को अपना ही देश समझ कर सुख शान्ति से जीवन व्यतीत करिये। कल ही दरबार मे आपको उपहार स्वरूप जागीर प्रदान की जावेगी। मारवाड़ ही नही मेवाड़ भी आपके उपकारों का ऋणी है और रहेगा। आपके अनुभवपूर्ण परामर्श द्वारा समय पर हम अब भी लाभान्वित होते रहेंगे।

कुछ समय तक इसी प्रकार बातें होती रहीं। महारानी लालबा और हमीदा भी बहुत समय बाद मिली थीं इसलिये खूब घुलमिल कर बातें करती रहीं। सबके ठहरने का यथोचित प्रबन्ध कर दिया गया। हमीदा महारानी लालबा के साथ ही रही। दुर्गादास और बहीदखां राजभवन में ही एक ओर सुसज्जित सुन्दर भव्य प्रासाद मे ठहराये गये। महारानी लालबा

व महाराणा जयसिंह स्वयं देख भाल कर रहे थे। यथा समय सब अपने प्रासाद में विश्राम करने चले गये।

दूसरे दिन दरबार में महाराणा ने दुर्गादास व वहीदखां का परिचय देते हुये सभासदों से उनके विषय में सारा हाल कहा। वहीदखां को सेना में एक उच्च पद दिया गया और दुर्गादास को सम्मान सहित जागीर प्रदान की गई। दुर्गादास महाराणा के सलाहकार के रूप में प्रायः साथ ही रहने लगे। उनके परिवार के लोगों को तो पहले ही महाराणा ने यथोचित पद प्रदान कर दिये थे। जब से दुर्गादास ने उन्हें महाराणा की सेवा में भेजा था तब से वे लोग यहीं सुख से रहते थे। दुर्गादास अब वृद्धावस्था में एकान्त जीवन व्यतीत करना चाहते थे इसलिये महाराणा ने उनके लिये पिछोला झील के किनारे एक शीशमहल बनवा दिया था। वहीं वह एकान्तवास किया करते थे। महारानी लालबा स्वयम् उनके भोजन का प्रबन्ध किया करती थीं। ऐसा अपूर्व आतिथ्य सत्कार देखकर एक दिन दुर्गादास ने कुछ संकोच भी प्रकट किया तो उसी समय महारानी लालबा ने महाराणा की उपस्थिति में ही कहा "यह तो हमारा सौभाग्य है कि आप जैसे देशभक्त महापुरुष जिनका नाम मात्र सुनकर राजस्थान का बच्चा बच्चा छाती फुला कर गर्व से सिर ऊँचा किये हुये गौरवान्वित हो उठता है, हमें अतिथि के रूप में प्राप्त हुये हैं। हम जितनी भी आपकी सेवा करें कम है। आपके दर्शन मात्र किसी पवित्र तीर्थ के दर्शन से कम नहीं हैं। यह शब्द मेरे मुख से आपको प्रसन्न करने के लिये नहीं निकल रहे हैं प्रत्युत यह वह पवित्र उच्च भावना है जो प्रत्येक राजस्थान वासी ही नहीं प्रत्येक भारतीय के हृदय से निकल कर वातावरण में गूंज रही है और इतिहास के पृष्ठ यह बता देंगे कि

स्वर्णाक्षरों में अङ्कित किया हुआ महापुरुष वीर दुर्गादास का चरित्र श्लाघनीय ही नही अनुकरणीय भी है और भविष्य में भी सदैव भारतवासियों का पथ-प्रदर्शन कराता रहेगा।"

अपने जीवन के अन्तिम काल का कुछ भाग दुर्गादास ने सुख शान्ति पूर्वक उदयपुर में ही व्यतीत किया। कभी-कभी उन्हें यह विचार करके अवश्य असन्तोष होता था कि पूर्ण चेष्टा करने पर भी वह राजपूत जाति को खींचकर खड़ा न कर सके और उनकी हार्दिक भावनायें हृदय में ही दबी हुई रह गईं।

कुछ समय अनन्तर वह महाराणी की आज्ञा लेकर उज्जैन चले गये और वहां महाकालेश्वर का पूजन करने में लीन रहने लगे। थोड़े दिन बाद ही उनका वहीं स्वर्गवास हो गया। उनका मृत शरीर क्षिप्रा नदी के किनारे चिता मे भस्म किया गया। उस समय उनके परिवार का कोई व्यक्ति वहां न था। मारवाड़ का उद्धार करने वाले राजस्थान के महापुरुष वीरवर दुर्गादास राठौर के शरीर का अन्त हो गया किन्तु उस पराक्रमी नर-रत्न का सुयश रवि-रश्मियों के समान चारों ओर फैल गया और उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

———